* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

मूल्य ८ रुपये

पुष्पकारूढ़ श्रीराम

महारास-लीला

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अक्टूबर २०१६ ई०

संख्या १०

पूर्ण संख्या १०७९

महारास-लीला

आस्वादक आस्वाद्य न दो थे, था मधुमय लीला-संचार।
था यह एक विलक्षण पावन परम प्रेमरसका विस्तार॥
मधुर परम इस रस-सागरमें गोपीजनका ही अधिकार।
परम त्यागका मूर्त रूप लख जिन्हें किया हरिने स्वीकार॥
प्रेममयी व्रज-रमणी-गण-मण्डलमें हुए सुशोभित श्याम।
अगणित राशि तारिकामें अकलङ्क पूर्ण विधु विमल ललाम॥
अथवा नव नीलाभ-श्याम घन दामिनि-दलमें रहे विराज।
घन दामिनि, दामिनि घन अन्तर अगणित उभय अतुल द्युति साज॥
रासेश्वरी राधिकाके एकाधिपत्यमें सुन्दर साज।
शुचि सौन्दर्य मधुर रसमय असमोर्ध्व अमित बिजली-घनराज॥
एक एकके मध्य मनोहर एक एक, सब मिल, दे ताल।
रास-रसिक रस-नृत्य-निरत, शुचि बाज रहे मृदु वाद्य रसाल॥

[श्रीराधा-माधव-चिन्तन]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अक्टूबर २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम्हें अपना लाभ और दूसरेका नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तबतक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे।

जबतक तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरेकी निन्दा प्यारी लगती है, तबतक तुम निन्दनीय ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपना सम्मान और दूसरेका अपमान सुख देता है, तबतक तुम अपमानित ही होते रहोगे।

जबतक तुम्हें अपने लिये सुखकी और दूसरेके लिये दुःखकी चाह है, तबतक तुम सदा दुखी ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपनेको न ठगाना और दूसरेको ठगना अच्छा लगता है, तबतक तुम ठगाते ही रहोगे।

याद रखो—जबतक तुम्हें अपने दोष नहीं दीखते और दूसरेमें खूब दोष दीखते हैं, तबतक तुम दोषयुक्त ही रहोगे।

जबतक तुम्हें अपने हितकी और दूसरेके अहितकी चाह है, तबतक तुम्हारा अहित ही होता रहेगा।

जबतक तुम्हें सेवा करानेमें सुख और सेवा करनेमें दुःख होता है, तबतक तुम्हारी सच्ची सेवा कोई नहीं करेगा।

जबतक तुम्हें लेनेमें सुख और देनेमें दुःखका अनुभव होता है, तबतक तुम्हें उत्तम वस्तु कभी नहीं मिलेगी।

जबतक तुम्हें भोगमें सुख और त्यागमें दुःख होता है, तबतक तुम असली सुखसे वंचित ही रहोगे।

जबतक तुम्हें विषयोंमें प्रीति और भगवान्में अप्रीति है, तबतक तुम सच्ची शान्तिसे शून्य ही रहोगे।

जबतक तुम्हें शास्त्रोंमें अश्रद्धा और मनमाने आचरणोंमें रति है, तबतक तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

जबतक तुम्हें साधुओंसे द्वेष और असाधुओंसे प्रेम है, तबतक तुम्हें सच्चा सुपथ नहीं मिलेगा।

जबतक तुम्हें सत्संगसे अरुचि और कुसंगमें प्रीति है, तबतक तुम्हारे आचरण अशुद्ध ही रहेंगे।

जबतक तुम्हें जगत्में ममता और भगवान्से लापरवाही है, तबतक तुम्हारे बन्धन नहीं कटेंगे।

याद रखो—जबतक तुम्हें अभिमानसे मित्रता और विनयसे शत्रुता है, तबतक तुम्हें सच्चा आदर नहीं मिलेगा।

जबतक तुम्हें स्वार्थकी परवा है और परार्थकी नहीं, तबतक तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध नहीं होगा।

जबतक तुम्हें बाहरी रोगोंसे डर है और काम-क्रोधादि भीतरी रोगोंसे प्रीति है, तबतक तुम नीरोग नहीं हो सकोगे।

जबतक तुम्हें धर्मसे उदासीनता और अधर्मसे प्रीति है, तबतक तुम सदा असहाय ही रहोगे।

जबतक तुम्हें मृत्युका डर है और मुक्तिकी चाह नहीं है, तबतक तुम बार-बार मरते ही रहोगे।

जबतक तुम्हें घर-परिवारकी चिन्ता है और भगवान्की कृपापर भरोसा नहीं है, तबतक तुम्हें चिन्ता-युक्त ही रहना पड़ेगा।

जबतक तुम्हें प्रतिशोधसे प्रेम है और क्षमासे अरुचि है, तबतक तुम शत्रुओंसे घिरे ही रहोगे।

जबतक तुम्हें विपत्तिसे भय है और प्रभुमें अविश्वास है, तबतक तुमपर विपत्ति बनी ही रहेगी।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

पुष्पकारूढ़ श्रीराम

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

(रा०च०मा० ७। मंगलाचरण)

अर्थात् मोरके कण्ठकी आभाके समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी)-के चरण-कमलके चिह्नसे सुशोभित, शोभासे पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथोंमें बाण और धनुष धारण किये हुए, वानरसमूहसे युक्त, भाई लक्ष्मणजीसे सेवित, स्तुति किये जाने योग्य, श्रीजानकीजीके पति, रघुकुलश्रेष्ठ, पुष्पक विमानपर सवार श्रीरामचन्द्रजीको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

पुष्पक विमान इच्छानुसार चलनेवाला दिव्य विमान था। उस विमानमें सोनेके खम्भे और वैदूर्यमणिके फाटक लगे थे। वह सब ओरसे मोतियोंकी जालीसे ढका हुआ था। उसके भीतर ऐसे-ऐसे वृक्ष लगे थे, जो सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले थे। उसका वेग मनके समान तीव्र था। वह अपने ऊपर बैठे हुए लोगोंकी इच्छाके अनुसार सब जगह जा सकता था तथा चालक जैसा चाहे, वैसा छोटा या बड़ा रूप धारण कर लेता था। उस आकाशचारी विमानमें मणि और सुवर्णकी सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनी थीं। वह देवताओंका ही वाहन था और टूटने-फूटनेवाला नहीं था। सदा देखनेमें सुन्दर और चित्तको प्रसन्न करनेवाला था। उसके भीतर अनेक प्रकारके आश्चर्य-जनक चित्र थे। उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे, जिनसे उसकी विचित्र शोभा होती थी। ब्रह्मा (विश्वकर्मा)-ने उसका निर्माण किया था। वह सब प्रकारकी मनोवांछित वस्तुओंसे सम्पन्न, मनोहर और परम उत्तम था। न अधिक ठण्डा था और न अधिक गरम। वह विमान सभी ऋतुओंमें आराम पहुँचानेवाला तथा मंगलकारी था।

ब्रह्माजीने यक्षोंके स्वामी राजराज वैश्रवण कुबेरकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर उन्हें यह विमान दिया था। रावण इन कुबेरका विमातासे उत्पन्न भाई था। उसने दीर्घकालतक तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे गन्धर्वों, देवताओं, असुरों, यक्षों, राक्षसों, सर्पों, किन्नरों तथा भूतोंसे अपराजेयताका वरदान प्राप्त किया। वरदानसे गर्वित रावणने सबसे पहले अपने भाई कुबेरको युद्धमें परास्त किया और उन्हें लंकाके राज्यसे बहिष्कृत कर दिया। यक्षराज कुबेर लंका छोड़कर गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों तथा किम्पुरुषोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर आकर रहने लगे, परंतु रावण इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसने पुनः आक्रमण करके उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया। तब कुबेरने कुपित होकर उसे शाप दिया—'अरे! यह विमान तेरी सवारीमें नहीं आ सकेगा। जो तुझे युद्धमें मार डालेगा, उसीका यह वाहन होगा। मैं तेरा बड़ा भाई होनेके कारण मान्य था, परंतु तूने मेरा अपमान किया है। इससे बहुत शीघ्र तेरा नाश हो जायगा'—

विमानं पुष्पकं तस्य जहाराक्रम्य रावणः।
शशाप तं वैश्रवणो न त्वामेतद् वहिष्यति॥
यस्तु त्वां समरे हन्ता तमेवैतद् वहिष्यति।
अवमन्य गुरुं मां च क्षिप्रं त्वं न भविष्यसि॥

(महा० वन० २७५। ३४-३५)

राम-रावण-युद्धमें जब रावणका वध हो गया, तो विभीषणने लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामजीके वापस अयोध्या लौटनेहेतु पुष्पक विमान उन्हें प्रस्तुत किया था। इस प्रकार श्रीरामजी पुष्पकारूढ़ होकर अयोध्या आये और अयोध्या आनेके पश्चात् उन्होंने उस दिव्य विमानका पूजनकर उसे प्रसन्नतापूर्वक कुबेरजीको वापस कर दिया।

प्रतिकूलताका नाश

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रतिकूलताके अनुभवमें ही दुःख है, अतएव दुःखोंके आत्यन्तिक अभावके लिये प्रतिकूलताका त्याग करना चाहिये। इसके लिये भक्ति और ज्ञान ये दो उपाय हैं एवं दोनों ही उत्तम हैं। अधिकारी-भेदके अनुसार ज्ञानियोंके लिये ज्ञानयोग और भक्तोंके लिये कर्मयोग भगवान्ने (गीता ३। ३)-में बतलाया है तथापि ज्ञानकी अपेक्षा सर्वसाधारणके लिये भक्तिका उपाय ही सुगम है। ईश्वर-भक्तिके प्रतापसे सम्पूर्ण दुःखोंके मूल प्रतिकूलताका अत्यन्त अभाव हो जाता है। ईश्वर-भक्तकी किसी भी जीवमें और किसी भी पदार्थमें प्रतिकूलता नहीं रहती, क्योंकि वह समझता है कि ईश्वर ही सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे विराजमान हो रहे हैं, अतएव किसीसे भी द्वेष करना परमेश्वरसे ही द्वेष करना है। इसके अतिरिक्त वह सम्पूर्ण पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशमें भी ईश्वरकी अनुकूलताका ही दर्शन करता है। इस हालतमें वह किससे कैसे द्वेष करे ? जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही उनके सुख-दुःख-भोगके लिये परमेश्वर सम्पूर्ण पदार्थोंको रचते हैं। जो पुरुष इस प्रकार समझता है, वह ईश्वरके किये हुए प्रत्येक विधानमें वैसे ही प्रसन्नचित्त रहता है, जैसे मित्रके किये हुए विधानमें मित्र और पतिके विधानमें उत्तम स्त्री रहती है। उत्तम पतिव्रता स्त्री पतिकी अनुकूलतामें ही अपनी अनुकूलता जानती है। अर्थात् पतिकी अनुकूलता ही उसके लिये अपनी अनुकूलता है। पति जो भी कुछ भली-बुरी चीज लाता है अथवा जो कुछ भी चेष्टा करता है, वह उसीमें प्रसन्न रहती है, इसी प्रकार भगवान्का भक्त भी, भगवान् जो भी कुछ करते हैं हमारे अच्छेके लिये करते हैं, यह समझकर उनकी की हुई प्रत्येक चेष्टामें एवं पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशमें सदा प्रसन्नचित्त रहता है; यानी परेच्छा या अनिच्छासे जो भी कुछ अच्छे-बुरे पदार्थोंकी एवं सुख-दुःखोंकी प्राप्ति होती है, वे सब ईश्वरकी इच्छासे होनेके कारण ईश्वरकी लीला हैं, इस प्रकार समझकर वह हर समय आनन्दमें मग्न रहता है। वस्तुतः पतिव्रता स्त्रीका उदाहरण भी ईश्वरके साथ लागू नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्यमें स्वार्थ रहता है एवं ज्ञानकी कमी होनेके कारण उससे भूल भी हो सकती है, किंतु ईश्वर निर्भ्रान्त हैं, इसलिये उनकी लीला न्याय और ज्ञानसे पूर्ण है और उसमें जीवोंका हित भरा हुआ है।

विचार-दृष्टिसे देखा जाय तो सांसारिक पदार्थोंमें होनेवाली अनुकूलता भी त्याज्य है; क्योंकि सांसारिक सुख क्षणिक, नाशवान् एवं परिणाममें दुःखरूप होनेके कारण सांसारिक अनुकूलतामें होनेवाला सुख भी वस्तुतः दुःख ही है। जहाँ संसारके पदार्थोंमें अनुकूलता होती है, वहीं उनके प्रतिपक्षमें प्रतिकूलता रहती है और जहाँ अनुकूलता-प्रतिकूलता है, वहीं राग-द्वेष पैदा होते हैं। राग-द्वेषसे काम-क्रोधादि अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होकर महान् दुःखोंकी उत्पत्ति होती है, अतएव सांसारिक अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनोंहीको अनन्त दुःखोंका कारण समझकर त्याग करना चाहिये। इसीलिये भगवान्ने (गीता १३। ९)-में लिखा है कि इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें सदा-सर्वदा समचित्त रहना चाहिये।

इस प्रकारकी समता ईश्वरकी शरण होनेसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। ईश्वर सुहृद् हैं, दयालु हैं, प्रेमी हैं और ज्ञानस्वरूप हैं, इस प्रकार समझनेवाला पुरुष अपनी इच्छाका सर्वथा त्याग करके केवल एक ईश्वरकी इच्छाके ही परायण हो जाता है। वह अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको ईश्वरके अर्पण कर देता है, ईश्वरकी कठपुतली बन जाता है। ईश्वर ज्यों कराता है त्यों ही करता है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं करता एवं ईश्वरके किये हुए विधानमें सदा-सर्वदा प्रसन्नचित्त रहता है। इसीका नाम शरण है।

सुखकारक पदार्थमें अनुकूलता और दुःखकारक पदार्थमें प्रतिकूलता स्वभावसिद्ध है। विचार करनेसे संसारका कोई भी पदार्थ वास्तवमें सुखकारक नहीं है। परम आनन्दस्वरूप एवं परम आनन्ददायक परम हितकारी केवल एक परमात्मा ही हैं; इसलिये वास्तवमें परमात्मामें ही अनुकूलता होनी चाहिये। जो इस रहस्यको समझता है, वह परमात्माके अनुकूल बन जाता है और उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ परमात्माके अनुकूल हो जाती हैं। वह उन लीलामयकी प्रत्येक लीलामें उन लीलामयका दर्शन करता रहता है; इससे उसके लिये प्रतिकूलताका एवं सम्पूर्ण दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। वह उन लीलामयकी लीलाको और प्रेमास्पद परमात्माको अपने परम अनुकूल देखकर प्रतिक्षण मुग्ध होता रहता है।

ज्ञानकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो सांसारिक अनुकूलता और प्रतिकूलता वास्तवमें कोई वस्तु ही नहीं ठहरती; क्योंकि संसार स्वप्नवत् है और स्वप्नके पदार्थ सब मायामय हैं, इसलिये उससे उत्पन्न होनेवाली अनुकूलता और प्रतिकूलता भी मायामयी ही है। जब मनुष्य स्वप्नसे जागता है तब स्वप्नके किसी पदार्थको भी नहीं देखता और स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले पदार्थोंको मायामय समझता है, इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुष संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको मायामय समझता है। इस प्रकार जब मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थोंको स्वप्नसदृश मायामय समझ लेता है तब अनुकूलता और प्रतिकूलताकी कुछ भी सत्ता नहीं रह जाती। फिर एक चेतन विज्ञानानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त कोई भी वस्तु उसको प्रतीत नहीं होती। उसकी दृष्टिमें एक सर्वव्यापी नित्य विज्ञानानन्दघन ही रहता है और वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है। इसलिये जिसकी स्थिति उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे हो जाती है, उसकी दृष्टि भी सम्पूर्ण संसारमें सम हो जाती है और सांसारिक अनुकूलता एवं प्रतिकूलताकी दृष्टिका अत्यन्त अभाव हो जाता है। जब अनुकूलता और प्रतिकूलताका अत्यन्त अभाव हो जाता है तब राग-द्वेषादि सम्पूर्ण अनर्थोंका एवं सम्पूर्ण दु:खोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है एवं उसे परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। वास्तवमें वह परम आनन्द ब्रह्म ही परम अनुकूल है एवं वही सबका आत्मा होनेसे अपना आत्मा है। जब इस प्रकारका ज्ञान हो जाता है तब फिर उसकी प्रतिकूल बुद्धि कहीं नहीं हो सकती; क्योंकि अपने आपमें प्रतिकूलता नहीं होती। इस प्रकारके ज्ञानके द्वारा या उपर्युक्त ईश्वर-भक्तिद्वारा सम्पूर्ण दु:खोंके मूल प्रतिकूलताका सर्वथा नाश करना चाहिये।

गोमूत्रमें मिला सोना

गुजरातके जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालयके एक प्रोफेसर डॉ० बी०ए० गोलकियाने गोमूत्रसे सोना निकालनेका दावा किया है। चार सालोंकी रिसर्चके बाद डॉ० बी०ए० गोलकियाने गुजरातमें पायी जानेवाली प्रसिद्ध गीर नस्लकी गायोंके मूत्रसे सोना निकालनेका दावा किया है।

टाइम्स ऑफ इंडियामें छपी रिपोर्टके मुताबिक विश्वविद्यालयके बायोटेक्नोलॉजी विभागके अध्यक्ष डॉ० गोलकियाने अपने चार सालोंकी रिसर्चके दौरान गीर नस्लकी ४०० से अधिक गायोंके मूत्रकी लगातार जाँच करनेके बाद उन्होंने एक लीटर गोमूत्रमें ३ मिलीग्रामसे १० मिलीग्रामतक सोना निकालनेका दावा किया है।

उन्होंने कहा कि यह धातु आयनके रूपमें पायी गयी और यह पानीमें घुलनशील है।

गोमूत्र परीक्षणके लिये डॉ० गोलकिया और उनकी टीमने क्रोमैटोग्राफी—मास स्पेक्ट्रोमेट्री विधिका इस्तेमाल किया था। डॉ० गोलकियाने कहा—'अभीतक हम प्राचीन ग्रन्थोंमें ही गो-मूत्रमें स्वर्ण पाये जानेकी बात सुनते थे, लेकिन इसका कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं था। हम लोगोंने इसपर शोध करनेका फैसला किया। हमने गीर नस्लकी ४०० गायोंके मूत्रका परीक्षण किया और उसमें सोनेको खोज निकाला।'

उन्होंने कहा कि गोमूत्रसे सोना सिर्फ रासायनिक प्रक्रियाके जरिये ही निकाला जा सकता है। जिसमें एक स्वस्थ गायके मूत्रसे एक दिनमें कम-से-कम ३००० हजार रुपये कीमतका एक ग्राम सोना अर्थात् महीने भरमें लगभग एक लाख रुपयेकी कीमतका सोना निकाला जा सकता है।

डॉ० गोलकियाने कहा कि शोधके दौरान हमने गायके अलावा भैंस, ऊँट, भेड़ोंके मूत्रका भी परीक्षण किया था, लेकिन किसीमें सोना नहीं मिला। इसके अलावा शोधमें यह भी पाया गया है कि गो-मूत्रमें ३८८ ऐसे औषधीय गुण होते हैं, जिससे कई बीमारियोंको ठीक किया जा सकता है। डॉ० गोलकियाके अनुसार गीर नस्लकी गायोंके मूत्रमें ५,१०० पदार्थ मिले हैं, जिनमेंसे ३८८में कई बीमारियाँ दूर करनेके चिकित्सकीय गुण हैं।

डॉ० गोलकियाकी टीम अब भारतमें पायी जानेवाली अन्य देशी गायोंके गो-मूत्रपर शोध करेगी।

[गो-सम्पदासे साभार]

जीवोंकी स्वतन्त्रता

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भगवद्भक्तिनिष्ठा अथवा तत्त्वज्ञाननिष्ठामें जैसे सदाचार, काम-क्रोधादिका राहित्य अपेक्षित है, वैसे ही निरहंकारिता भी परम अपेक्षित है। यदि काम-क्रोधादिसे बचनेका ही घमण्ड हो गया तो भी पतन ही समझना चाहिये। श्रीनारदजीने कामको जीत लिया, परंतु उसीका घमण्ड होनेसे अन्तमें उन्हें कष्ट उठाना पड़ा। महात्मा मार्कण्डेयके सामने भी कामादि दोष आये, उन्होंने उनपर विजय प्राप्त कर ली, परंतु उसका कुछ भी मद उन्हें न हुआ—'**इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन् धर्षितोऽपि महामुनिः। यन्नागादहमोभावं न तच्चित्रं महत्सु हि॥**' भागवतोंके लक्षणमें कहा गया है कि जिसे जन्म-कर्मादि किसी भी हेतुसे इस देहमें अभिमान नहीं होता, वह भगवान्‌को प्रिय होता है—'**न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रम-जातिभिः। सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः॥**' अनादि अध्यासके कारण ही प्राणी देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारादिकी हलचलोंका अपनेमें आरोप करके अपनेको कर्ता मानने लगता है। बस, यही अहंकार तथा कर्म-लेप ही प्राणीको निरन्तर जनन-मरणके चक्रमें डालता है। भगवान्‌ने कहा है जो देहादिकी हलचलमें भी आत्माको निर्लेप तथा अकर्ता ही मानता है, देहादिकी निश्चेष्टताके आधारपर आत्माके अकर्तापनकी भ्रान्ति नहीं करता, वही बुद्धिमान् है। जपा-कुसुमके सम्बन्धसे स्वच्छ स्फटिकमें जिस समय अरुणिमाका भान हो रहा हो, ठीक उसी समय स्फटिकको स्वच्छ ही समझना बुद्धिमानी है। जिसको यह लेप न हो, वह किसी भी भले-बुरे कर्मोंसे बद्ध नहीं होता। इसी सम्बन्धमें '**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु**', '**यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते**' इत्यादि भगवदुक्तियाँ हैं।

बिना तपस्या, भजन तथा सम्यक्-विचारके आत्माके अकर्त्तृत्वकी दृढ़ भावना नहीं होती। कहीं प्राणी पापोंसे बचनेके लिये झूठी भावना करता है कि मैं तो अकर्ता हूँ, परंतु वह केवल आत्मवंचना होती है। उसकी अन्तरात्मामें बार-बार उस पापका लगाव होता ही है। ऐसा प्राणी अशुभ कर्मोंके लिये अपनेको अकर्ता मान भी लेता है, परंतु शुभ कर्मोंका कर्ता तो वह अपने आपको ही मान बैठता है। एक सज्जनसे गोहत्या हो गयी, तो उन्होंने कह दिया कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ, हाथ और उसका देवता इन्द्र इसका जिम्मेदार है। हत्या इन्द्रके पास गयी। इन्द्रने कहा—'अच्छा ठहरो।' इन्द्रने वृद्धवेषमें वहाँ जाकर जब उसके आश्रम तथा कूपकी प्रशंसा करना प्रारम्भ किया, तब उसने कहा—'यह सब हमने ही किया है।' भगवान् परब्रह्मने देवताओंकी सहायता करके उन्हें विजय प्रदान की, परंतु देवताओंने उसे अपनी विजय माना। समझा कि हमने अपने अस्त्र-शस्त्र, सैनिक, बुद्धि तथा बाहुबलसे देवासुर-संग्राममें विजय पायी है। भगवान्‌ने समझ लिया कि बस, ये भी असुर हो गये; क्योंकि असु-प्राण-तदुपलक्षित अनात्माको आत्मा मानकर उसके वैभवमें जो रमण करता है, वही 'असुर' है अथवा अशोभन अनात्मामें रमण करनेवाला भी प्राणी असुर ही हो सकता है। दिव्य तेजोमय स्वरूपसे देवताओंके सामने प्रकट होकर भगवान्‌ने यह दिखला दिया कि अग्नि, मातरिश्वा (वायु) आदि मेरे बिना एक तृणको भी जला तथा उड़ा नहीं सकते, दुनिया एक मेरी ही शक्तिसे सर्वत्र काम कर रही है, प्राणी तो कठपुतलीके समान है। जैसे पंखों और लट्टुओंमें हलचल तथा प्रकाश तभीतक है, जबतक उनका सम्बन्ध विद्युद्भवनसे है, उस सम्बन्धके टूटते ही हलचल और प्रकाश दुर्लभ ही है। इसी तरह अचिन्त्य, अनन्त शक्तियोंके अधिष्ठान भगवान्‌का जहाँतक सम्बन्ध है, वहींतक किसीकी भी कोई करामात हो सकती है।

प्रह्लादने अपने पितासे कहा था—'राजन्! केवल मेरा ही नहीं, अपितु सब बलवानोंका बल भी भगवान् ही है।' सम्पूर्ण बलोंका आश्रय प्राण है और उस प्राणका भी प्राण, प्राणका भी आश्रय भगवान् ही है।

निरुपाधिक आत्मा सर्वत्र एक है, अकर्ता है। सोपाधिकमें

जो भी शक्ति आती है, वह भगवान्‌से आती है। अक्रूरने कहा—प्रभो! हम आपके शरण आये हैं—यह भी आपकी ही अनुकम्पा है, मेरा तो वह भी सामर्थ्य नहीं है। जब प्राणियोंका संसार मिटना होता है, तब सन्तोंकी कृपासे आपके चरणोंमें प्रीति होती हैं—'**सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये। पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात्॥**' भगवान्‌ने भी ब्रह्मासे कहा है कि 'तुमने जो मेरी कथाओंसे युक्त मेरी स्तुति की है और जो तुम्हारी तपस्यामें निष्ठा हुई है, वह सब मेरा ही अनुग्रह है—'**यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम्। यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः॥**' युधिष्ठिरके प्रति देवर्षि नारदकी भी उक्ति है कि 'राजन्! सम्पूर्ण संसार सर्वथा ईश्वरके वशमें है, पालकोंके सहित समस्त लोक उसीको बलि प्रदान करते हैं—'**मा कञ्चन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत्। लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः॥**' जैसे नाक छेदकर नथान डालकर पराधीन बनाया हुआ बैल स्वामीका काम करता है, वैसे ही सब प्राणी पराधीन होकर परमेश्वरकी रुचिका अनुसरण कर रहे हैं। जैसे बालकोंके खेलनेके खिलौने खेलनेवाले बालकके पराधीन होते हैं, वैसे ही सब प्राणी ईश्वरके पराधीन होते हैं—'**यथा क्रीडोपस्करावां संयोगविगमाविह। इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम्॥**'

काल-कर्म और गुणोंके पराधीन प्राणी स्वतन्त्रताका अहंकार करता है, तो उसका यह उन्माद ही है। जैसे घट, कुण्डल, तरंग आदिकी गति-स्थिति आदि मृत्तिका, सुवर्ण एवं जलके ही पराधीन है, वैसे ही जीवोंकी भी सम्पूर्ण स्थिति, प्रवृत्ति परमेश्वराधीन ही है।

'मैं सेवक सीतापति मोरे'

(पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी, 'मानस मधुप', साहित्यायुर्वेदरत्न)

भाव कुभाव सुश्रुषा कैसी, पता न सेवा धर्म।
उर प्रेरक जो कहते-करता, जग के सारे कर्म॥
कुछ भी नहीं पात्रता, फिर भी कहते मुझे न शर्म।
तेरा हूँ! इस अहंकार का ही पहिना है वर्म॥

सेवक सेव्य भाव बिनु भव से कोई पार न पाया।
तरना मुश्किल, प्रियतम से मिलने को मन ललचाया॥
भटका, भटक रहा, भटकों ने भी मिलकर भटकाया।
युग बीते थक गया जगत ने अब तक खूब रुलाया॥

'उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी'—चौरासी को भोग।
योग, वियोग, सुयोग कहूँ या इसको जुगुल सँयोग॥
करुणाकर की करुणा का हूँ, करुणिक, हे करुणाकर!
बानक, आनक बना अचानक, प्रभु आकर करुणा कर॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे—मुनि सुतीक्ष्ण की बानी।
मैं सेवक सीतापति मोरे—यही टेक मनमानी॥
किसी योनि में जन्म मिले, पर रहे न मन में ग्लानी।
तुलसी के मानस का सम्बल, पाई यही निशानी॥

तुम अखण्ड मैं खण्ड, सदा से सत्ता एक रही है।
ईश्वर अंश जीव अविनाशी—जो यह उक्ति सही है॥
अहम् अस्मि, तत् त्वम् असि, तत्त्वम् असि में इतना जोड़ो।
मैं तेरा हूँ, तू मेरा है—तू तू मैं मैं छोड़ो॥

मैं तेरा हूँ! तुम मेरे हो, मैं कहता—तुम कह दो।
प्राण प्राणधन तू मेरा है! बस इतना ही कह दो॥
अधमोद्धारक आप, अधम की यही माँग या सेवा।
'मधुप' धन्य हो जाय कृपा फल, पाकर मन की मेवा॥

भगवान्‌का परम भक्त कौन ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भक्त-प्रेमी लोग बड़े विलक्षण होते हैं। दक्षिण भारतमें दो भक्त हुए स्त्री-पुरुष। जिनमें एकका नाम था राँका और दूसरेका नाम था बाँका। राँका पति थे और बाँका उनकी पत्नी थी। वे अत्यन्त दरिद्र थे और भगवान्‌के परम भक्त थे। उनको भगवान्‌का ही आश्रय था। हम लोग कई जगह भूल कर जाते हैं, जब हम यह मानते हैं कि धनसे, पदसे, अधिकारसे, संसारकी वस्तुओंसे, संसारके सुखोंसे भगवान्‌की कृपाका नाप-तौल होता है, उस समय हम भूल जाते हैं। पता नहीं भगवान्‌की कृपा कल किस रूपमें आयेगी। इसी रूपमें आये, सो बात नहीं है। उनके विनाशके रूपमें भी आती है। जब भगवान्‌की कृपाका वह अवलम्बन करता है, तब सब जगह भगवान्‌की कृपा देखता है। वह वस्तु नहीं देखता है। वस्तुकी प्राप्तिमें कृपा हो सकती है और वस्तुके विनाशमें भी कृपा हो सकती है, उससे बढ़कर। इसलिये वस्तुका कोई महत्त्व नहीं है।

जो गरीब हैं, जिनके पास पैसा नहीं, जिनके पास अधिकार नहीं, धन नहीं, मिल्कियत नहीं, एक दिन भी पूजा नहीं करता, जानता नहीं, जो संसारसे अंजान हैं, लोग जिनको तुच्छ मानते हैं वे भगवान्‌के परम भक्त हो सकते हैं। इसे कौन जानता है। राँका-बाँका ऐसे ही थे। उन्हें कोई नहीं जानता था, परंतु वे भगवान्‌के परम भक्त थे। वे रोज दोनों जंगलमें जाकर लकड़ी लाते थे और लकड़ीका बोझा उतना ही, जिससे उनका कार्य चल जाय। उनमें कोई संग्रह, भोगकी आसक्ति नहीं थी। अधिक लाकर जमा करनेकी प्रवृत्ति नहीं थी। लकड़ीका एक बोझा लाते। उस बोझेको बाजारमें बेच देते। उससे जितना पैसा मिलता, उसमेंसे आधे पैसे दूसरेको दे देते। हमारे यहाँ शास्त्र कहते हैं कि कमाईका दशांश दान दे देना चाहिये। राँका-बाँका उस आधे पैसेसे अपना पेट भरते और रात-दिन भगवान्‌का भजन करते—निरन्तर। ऐसे लोग सबसे ऊँचे हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६। ४७)

जो श्रद्धावान् हैं, वे सारे योगियोंमें परम योगी हैं। जो अन्तरात्मासे मुझको भजते हैं।

नामदेवजी सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने राँका-बाँकाके दारिद्र्यको देखा कि पहननेको कपड़ा नहीं, बैठनेको जगह नहीं, सोनेको झोपड़ी नहीं। इतनी दरिद्रता थी। तब एक दिन नामदेवजीने भगवान्‌से प्रार्थना की कि महाराज! ये आपके इतने महान् भक्त हैं। आपके प्रेमी हैं। इनको इतना दारिद्र्य, इनकी यह दशा है। आपसे इसे कैसे देखा जाता है? भगवान्‌ने कहा—इनकी यह दशा देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। मैं इनके साथ-साथ रहता हूँ। जहाँ बहुत है, वहाँ नहीं रहता।

नामदेवजीने कहा—महाराज! आप रहते तो हैं, परंतु ये बेचारे भूखों मरते हैं। आप सोचिये! भगवान्‌ने कहा—ये लेते नहीं हैं। इनको दूसरी चीजसे प्रेम है। आप देकर तो देखिये—नामदेवजीने कहा। भगवान्‌ने कहा—अच्छा! तुम देखना। कल सबेरे ये जब जायँ लकड़ी काटने, तब उस समय रास्तेमें तुम अमुक जगह खड़े हो जाना। उन्होंने कहा—ठीक है। जब वे जंगलमें जाने लगे, तब भगवान्‌ने अपनी मायासे एक सोनेकी मुहरोंकी थैली भरकर वहाँ डाल दी। उसका कपड़ा पारदर्शी था। मुहरें बाहरसे दीखती थीं। ये राँकाजी मस्त होकर भगवान्‌का कीर्तन करते हुए चले जा रहे थे। उन्हें बाहरी होश था नहीं। उनका पैर उस थैलीपर पड़ा। पैर पड़ते ही छनऽ की आवाज हुई। आवाज होनेपर उन्होंने देखा तो सोनेकी मुहरें थीं। तब वे जल्दी-जल्दी उसपर धूल डालने लगे। इतनेमें बाँकाजी आ पहुँची। उन्होंने

कहा—सरकार! क्या कर रहे हैं? यह धूलि क्यों डाल रहे हैं? बताइये, तो उन्होंने कहा—इसलिये धूल डाल रहे हैं कि ये सोनेकी मुहरें थीं। इन्हें देखकर कहीं तुम्हारा मन न विचलित हो जाय। इसलिये धूल डाल रहा हूँ। बाँकाजी बड़े आश्चर्यसे बोलीं—यह धूल-पर-धूल डालनेसे क्या लाभ है? राँकाजीने तो समझा कि मुहर है, धूल डाल दें, परंतु बाँका समझती हैं कि यह धूल है। फिर आप धूल-पर-धूल क्यों डालते हैं? वे आगे गये। तब वहाँ भगवान्ने लकड़ीके बोझ बाँधकर रख दिये थे। इनके मनमें आया कि इसे तो कोई बाँध गया है। इन लकड़ियोंको हम कैसे लें? यह तो उनकी चीज है। दूसरेका हक कैसे लें? वे लौट आये। बाँकाजी कुछ बोली नहीं, लेकिन राँकाजीने कहा—देखो, इन मुहरोंको देखनेका यह फल मिला कि आज भूखे रहेंगे।

इसका तात्पर्य यह है कि संसारकी किसी वस्तुके होने-न-होनेसे भगवत्कृपाका सरोकार नहीं है। एक विशाल सम्पत्तिके स्वामी सम्राट्पर भगवान्की कृपा हो सकती है और उससे भी कहीं अधिक कृपा एक दरिद्रपर हो सकती है, जिसके पास कोई वस्तु नहीं है। किसी वस्तुके होने-न-होनेसे भगवान्की कृपा तय नहीं होती है। हृदयमें, भगवान्के प्रति जिसके मनमें महान्-महान् कृतज्ञता भरी है, जो पल-पलमें भगवान्के प्रति अपनेको समर्पित करता है, जो भगवान्की राजीमें राजी है, जिसको भगवान्का मनोरम पता है, जो भगवान्के मनकी बात निरन्तर करता रहता है, जो भगवान्के सिवाय और किसीको जानता मानता नहीं है। इस प्रकारका जो भगवान्का प्रेमी है, उसके लिये संसारकी किसी वस्तुका कोई लोभ नहीं। अगर वस्तु आती है तो वह समझता है कि भगवान्की चीज सेवाके लिये मिली है। ईमानदारीसे सेवा करो। और जाती है तो समझता है कि वह भगवान्की चीज थी, भगवान्ने ले ली। वह अब उसे अपनाना चाहते हैं। अपने पास रखना चाहते हैं। यह बड़े आनन्दकी बात है। वे दें तो आनन्द और लें तो भी आनन्द है। हमें तो केवल उनकी चाकरीमें रहना है।

भगवान्की चाकरीमें कौन रहता है? चाकरका स्वभाव क्या है? आजकलकी यूनियनकी जगह दूसरी है और आजकलके मालिक भी दूसरे हैं। दोनोंमें अन्तर आ गया है। सेवक क्या है? चाकर कौन है? जो अपने आपको स्वामीकी रुचिमें समर्पित कर दे और मालिक कौन है? जो सेवकको अपना हृदय दे दे। जो सेवकको अपना हृदय दे दे, वह स्वामी है और जो स्वामीकी रुचिमें अपने जीवनको समर्पित कर दे, वह सेवक है। दास्य भक्ति इसीका नाम है।

हनुमान्जी दास्य भक्तिके आचार्य माने जाते हैं। हनुमान्जीके मनमें कभी गर्व आता ही नहीं है कि अमुक कार्य मैंने किया है। वह तो मानते हैं कि सारा-का-सारा कार्य भगवान् राघवेन्द्रकी शक्तिसे, उनकी प्रेरणासे, उनके बलसे होता है। मैं तो कुछ करनेलायक ही नहीं हूँ। मैं तो बन्दर हूँ। ***'साखा ते साखा पर जाई'*** यही तो मेरा कार्य है और मैं क्या कर सकता हूँ। जरा भी अभिमान नहीं आया, लेकिन रामकी रुचि ही देखते हैं। उनका इतना ऊँचा भाव है कि भगवान् रामके सामने नहीं आते।

एक बारकी बात है जब अयोध्यामें भगवान् रामका राजतिलक हो गया। उसके बाद तय होना था कि सभी लोग भगवान् रामकी सेवा करें। हनुमान्जी भी सेवा करें। तीनों भाई और सुग्रीव आदि इकट्ठे हुए। उन लोगोंने मन्त्रणा की कि ऐसा करो कि हम लोगोंको अधिक सेवा मिले और हनुमानको जरा कम मिले। कोई उपाय सोचो। उन्होंने सेवाकी एक सूची बनायी। भगवान्को कौन-कौन-सी सेवा अपेक्षित है, उसकी एक लम्बी लिस्ट बना दी और किस समय कौन-सी सेवा होगी, उसका समय भी लिख दिया। उन सेवा कार्योंके आगे सेवा करनेवालेका भी नाम लिख लिया। हनुमान्जीके लिये उसमें कोई जगह नहीं रही। उस सूचीको ले जाकर भगवान् राघवेन्द्रके सामने रख दिये और बोले—

महाराज! अस्त-व्यस्तता हो रही थी, कभी कोई आये, कभी कोई आये। व्यवस्था ठीक नहीं हो रही थी। हम लोगोंने विचार किया कि सेवाकार्य सुव्यवस्थित हो। इसलिये हमने सभी सेवाकार्यकी सूची बना दी है। आप इसे देखकर स्वीकार कर लें। भगवान्ने देखा फिर मुसकराये। उसमें हनुमान्का नाम नहीं था। बोले—ठीक है, सब कार्य इसमें आ गया, परंतु हनुमान्का नाम नहीं है। उन लोगोंने कहा—महाराज! अब कोई सेवा बची नहीं। इसलिये उनका नाम कहाँ लिखें? भगवान्ने कहा—ठीक है और उन्होंने उसपर हस्ताक्षर कर दिये। तब हनुमान्जी आये। उन्होंने कहा—महाराज! एक प्रार्थना है।

भगवान्ने कहा—बोलो, हनुमान्! हनुमान्जीने कहा—महाराज! एक सेवा बच गयी है। वह मुझे दी जाय। भगवान् राघवेन्द्रने कहा—इसमें तो कोई सेवा बची नहीं है। यदि बची है तो वह तुम्हारी है। हनुमान्ने कहा—महाराज! आप कोई मामूली आदमी तो हैं नहीं। आप राजाधिराज हैं। जब आपको जम्हाई आये, उस समय सामने कोई सेवक रहे, जो चुटकी बजा दिया करे। भगवान्ने इस कार्यको हनुमान्जीको सौंप दिया। लोगोंने कहा—यह किस समय लिखा जाय? तब हनुमान्जीने कहा—यह तो राघवेन्द्रसरकारसे पूछिये। मैं क्या बताऊँ? तब रामजीने कहा—मैं क्या बताऊँ? जम्हाईका भी कोई समय होता है क्या? रातको आ जाय, दिनमें आ जाय, रास्तेमें आ जाय, महलमें आ जाय, उठने, बैठने, नहाने, सोनेमें कभी भी आ सकती है। लोगोंने कहा—समय क्या लिखें? भगवान्ने कहा—सब समय लिखो, आठो प्रहर हनुमान्की सेवा रहेगी। अब सभी लोग हैरान हो गये। हम लोग तो समय-समयपर सेवा करेंगे और हनुमान् तो हमेशा सेवामें रहेंगे। इसे हम विरोध माने, परंतु बात क्या है? बात सच्ची है। यह सूझ क्यों आयी? जिनके मनमें सेवाका भाव जाग्रत् है, उनको सेवाका अवसर मिलता है और जो सेवासे जी चुराते हैं। उनके सामने सेवाका अवसर आकर चला जाता है।

जो भगवान्का हो जाता है, उसे भगवान् सदा अपने समीप रखनेमें प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। यदि दूर भेज देते हैं तब भी वह नाराज नहीं होता है, परंतु इससे भगवान्की अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। इसलिये हम भगवान्के हो जायँ—यह एक बात है। दूसरी बात, हम भगवान्के अनुकूल कार्य करें। उनकी रुचिके अनुसार कार्य करें। जब यह हो जायगा तब हमारी रुचि अलग नहीं रहेगी। हमारी आकांक्षा अलग नहीं रहेगी। भक्त कौन है? जो अपनी सारी आकांक्षाओंको अपनी सारी चाहोंको, अपने सारे मनोभिलाषको भगवान्के चाहमें मिला दे। अपनी अलग चाह रहे ही नहीं। अपनी चाह न पूरी हो तो कोई परवाह नहीं। केवल और केवल भगवान्की चाह पूरी हो। तब क्या होगा? उसे भगवान् महत्त्व देंगे कि यह मेरा है। उसके द्वारा वह कार्य करायेंगे, भगवान् जिस कार्यसे भगवान्का गौरव बढ़ता है। उसको भगवान् अपने स्तरपर रखेंगे, जिस स्तरपर रखनेसे भगवान् अपने-आपको सुखी अनुभव करेंगे। यह बड़े महत्त्वकी बात है और इसके हम सभी अधिकारी हैं। यह चीज बहुत बड़ी है और बहुत सस्ती भी है। सस्ती इसलिये कि इसमें और किसी प्रकारके विद्याकी, कर्मकी, किसी विशेष ज्ञानकी, किसी बहुत बड़ी साधनाकी, योगधारणाकी, षड्चक्रभेदनकी, कुण्डली-जागरणकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह सब भी मार्ग हैं और सब ठीक हैं, परंतु इसमें तो केवल भावकी आवश्यकता है। हम भावसे अपनेको भगवान्का बना लें। अपनेको अपना न रखें। अपनेको जगत्का न रखें। अपनेको विषयोंका न रखें। अपनेको कामना, वासना, आसक्ति और ममताका गुलाम न रखें। केवल भगवान्का बना लें। तब हम भगवान्के हो जायँगे। यह ममता, आसक्ति और कामना फिर रहेगी ही नहीं।

राधा बिना कृष्ण आधा

(श्रीफतेहचन्दजी अग्रवाल)

वह सुन्दर चित्रकार थी; किंतु उसने अपनी चित्रांकन-कलाका कभी अभिमान नहीं किया था। उसका नाम उसके गुणोंके अनुकूल था। 'चित्रा' नाम था उसका। उसका धाम था कृष्णकी पवित्र क्रीडास्थली 'गोकुल'। चित्रांकनकी कलामें वह इतनी निपुण और सिद्धहस्त थी कि किसी भी वस्तु, पक्षी, पशु, ताल-तलैया या मानवका चित्र कल्पनामात्रपर बना लिया करती थी। बस, उसे हाथमें तूलिका उठा लेनेभरकी देर होती कि चित्र सर्वोत्कृष्ट एवं हृदयाकर्षी बन जाता।

'चित्रा' अपने कुशल-व्यवहार एवं मधुर स्वभाव तथा अद्भुत चित्रांकन-कलाके कारण आस-पासके क्षेत्रोंकी तो बात ही क्या, दूर-दूरतक चर्चित हो गयी थी।

वह बचपनसे ही 'कृष्ण'-भक्तिमें अनुरक्त थी। अपने आराध्य कृष्णका सुन्दर-सा चित्र वह बना सके, इसी प्रयासमें आज वह एक महान् चित्रकार बन गयी थी। उसकी ख्याति इतनी विस्तृत हो गयी थी कि किसीको भी चित्र बनवाना होता तो उसे बस एक ही नाम सूझता 'चित्रा'। किंतु इतनेपर भी चित्रा सन्तुष्ट नहीं थी। उसे अपनी चित्रांकन-कलापर कभी-कभी सन्देह होने लगता था। वह सोचा करती यदि मैं इतनी प्रतिभासम्पन्न चित्रकार हूँ तो क्यों नहीं अभीतक नन्दबाबाके नटखट श्यामसुन्दर कन्हैया मेरी ओर आकर्षित हुए? उन्होंने आजतक कभी भी मुझे अपना चित्र बनानेके लिये नन्दभवनमें आमन्त्रित क्यों नहीं किया? निश्चय ही अभी मैं पूर्णरूपसे चित्रांकन-कलामें निपुण नहीं हो पायी हूँ। अचानक फिर उसे दूसरे ही क्षण याद आता—मथुरा-नरेशने भी तो मुझसे अपना चित्र बनवाया था और उस चित्रसे इतने सन्तुष्ट हुए थे कि उन्होंने अपने दरबारमें राज्यशिल्पी-जैसा उच्चस्थान प्रदान करना चाहा था। मैंने ही तो उनके प्रस्तावको ठुकरा दिया था।

चित्रा 'कृष्ण' के नटखट स्वरूपको हृदयमें बसा घण्टों गुमशुम बैठी रहती, सोचती रहती, कितना अच्छा होता यदि मैं चित्रकार न होकर 'ग्वालिन' होती। कृष्ण-कन्हैयाको रोज माखन खिला पाती, रोज उसे देख पाती। उसके साथ धेनु चराने भी चली जाती, भले ही कोई कुछ भी कहता। मैं किसीकी परवा न करती। इस प्रकार मन-ही-मन कृष्णका स्मरण करते हुए चित्रा राधाजीके भाग्यको सराहती तथा कभी-कभी उसे राधाजीसे ईर्ष्या-सी होने लगती। चित्रा सोचती कहाँ चित्तचोर सुन्दर श्याम और कहाँ वह गाँवकी राधा। उसके घाघरेमें तो सदा गोबर लगा रहता है, पर भाग्य देखो, सदा श्यामसुन्दरका सामीप्य प्राप्त है उसे। धिक्कार है मुझे और मेरी कलाको जो कृष्णके सामीप्यसे वंचित है।

इस प्रकार नित्य शुद्ध और पवित्र हृदयसे 'चित्रा' 'कृष्ण' का चिन्तन किया करती। श्रीकृष्ण तो सदासे ही भाव और भक्तिके भूखे, भक्तवत्सल और अन्तर्यामी हैं। वे चित्राके विचित्र एवं निर्मल-निर्भ्रम प्रेमसे अन्ततः एक दिन द्रवित हो ही उठे और अचानक घरमें रूठकर बैठ गये।

प्रातःकालका समय है, यशोदा मैया सोच रही हैं क्या बात है आज लाला माखन माँगने नहीं आया! दूसरे दिनों तो भले ही सूर्य उदय होना भूल जाय, किंतु वह माखन माँगना नहीं भूलता। माखन, माखनकी रट लगा देता है। आज क्या बात है? माँ यशोदाकी चिन्ता स्वाभाविक थी। वे विचलित-सी हुईं नन्दबाबाके पास गयीं। पूछा—आपने कन्हैयाको कहीं भेजा है? नहीं तो, भला वह कोई कार्य करता है जो मैं उसे कहीं भेजता! कल रात चन्द्रावलीकी मटकी फोड़ आया था। इसलिये भयवश मेरे सामने तो आ ही नहीं सकता। नन्दबाबाके उत्तरसे यशोदा अधिक चिन्तित हो उठीं, बोलीं—'अरे

तो फिर कहाँ गया?' इतनेमें ही आवाज आयी कृष्णकी—'मैया, अरी ओ मैया! मैं यहाँ हूँ, किंतु मैं क्यों बताऊँ कि मैं कहाँ हूँ। मैं तो आज रूठा हुआ हूँ और रूठनेवाला चुप रहता है, इसलिये मैं नहीं बताता।'

नन्दबाबा और माँ यशोदा दोनों अपने कान्हाकी ऐसी बातें सुनकर मुँह दबाकर हँसने लगे। मैयाने देखा आवाज पलंगके नीचेसे आ रही है। उन्होंने झुककर पलंगके नीचे देखा, कन्हैया मुँह फुलाये घुटने मोड़े चुपचाप बैठा है। पसीनेसे तर हुआ श्यामल मुँह कुम्हला-सा गया है। यशोदा मैयाने प्राय: नीचे लेटते हुए पलंगके नीचेसे कन्हैयाको निकाला और वात्सल्यप्रेमके साथ अंकमें भरकर चूमने लगीं। फिर गोदमें बैठाकर प्रेमपूर्वक अपने आँचलसे कृष्णके शरीरका पसीना पोंछने लगीं। पुन: पंखा लहराते हुए पूछा—'क्यों रूठा है मेरा लाला! कुछ पता तो चले।' 'मुझे अपना चित्र बनवाना है' तुनककर बोले जगत्पिता बालरूप कृष्ण।

मैया यशोदाको जोरोंकी हँसी आ गयी। आज तुझे यह चित्र बनवानेकी क्या सूझी? रोज तो माखनके लिये रूठा करता था, फिर आज चित्रके लिये क्यों?

सभीके चित्र हैं हमारे भवनमें; केवल मेरा ही नहीं है, मेरे साथ यह अन्याय क्यों? मेरा भी चित्र तत्काल बनवाया जाय, सभी चित्रोंके ऊपर लगाया जाय, तभी मैं मानूँगा। अन्यथा रूठा ही रहूँगा। मचलते हुए कहा कृष्णने।

नरोत्तम कृष्ण जानते थे, मेरा रूठना न तो मैया सह सकती हैं और न नन्दबाबा। मेरे रूठे रहनेपर अवश्य ही मेरा चित्र बनवाया जायगा और चित्र बनानेके लिये मेरी प्रिय भक्ता चित्राको ही बुलाया जायगा। इस प्रकार चित्राकी मन:कामना पूर्ण की जा सकेगी। वही हुआ जो कृष्ण चाहते थे। चित्राको बुलवाया गया, वस्तुत: इसी बहाने श्रीकृष्ण चित्राको कुछ शिक्षा भी देना चाहते थे।

आज चित्राकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। वह हर्षोत्फुल्ल हो रही थी, आज वह दिन आ गया था, जिसकी वर्षोंसे उसे प्रतीक्षा थी तथा जिस उद्देश्यसे उसने चित्रांकन-कलाको अपने जीवनयापनका माध्यम बनाया था। वह बेसुध-सी हुई नन्दभवन जानेकी तैयारीमें जुट गयी।

नन्दभवनमें बैठी हुई चित्रा कृष्णके स्वरूपका चिन्तन कर ही रही थी कि इतनेमें ही अचानक उसके जीवनाधार कृष्ण वहाँ आ पहुँचे। वे तुरंत एक छोटी-सी चौकीपर खड़े होते हुए चित्रासे बोले—'चित्र सुन्दर बनाना, मेरी तरह ही।' चित्रा भावविभोर हो अपलक कुछ क्षण कृष्णको निहारती रही। सुधि लौटनेपर एक हाथमें तूलिका पकड़ी और दूसरेमें चित्रपट और चाहा कि कृष्णका चित्र बनाना आरम्भ करूँ, पर यह क्या उसके हाथ शिथिल क्यों हो गये? तूलिकाको क्या हो गया, वह क्यों नहीं चलती? उसने अपने-आपको संयत किया और चित्र क्यों अंकित नहीं हो रहा है, इसका अनुसन्धान करने लगी। ओह! उसे ध्यान आया, कृष्ण तो टेढ़ा खड़ा है, कदाचित् यही कारण है जो चित्र नहीं बन पा रहा है। उसने कृष्णको आदेश दिया—'सीधे खड़े रहो।' कृष्णने शरारती लहजेमें कहा—'सखी! यह कैसे सम्भव है? मैं तो हमेशासे ही नटखट और टेढ़ा हूँ, मैं क्या-क्या चीजें सीधी करूँ? मेरा मुकुट टेढ़ा, मेरी बाँसुरी टेढ़ी, मेरा नाम टेढ़ा। क्या तुम नहीं जानती मेरा एक नाम बाँकेबिहारी भी है और बाँकेका अर्थ तो टेढ़ा ही होता है न? तुम एक काम करो, मेरा टेढ़ा ही एक चित्र बना दो।' चित्रा मन्त्रमुग्ध-सी हुई कृष्णके वचनोंको सुन रही थी। उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह चित्रांकन करना ही भूल गयी है। जिस चित्राके हाथमें तूलिका आनेमात्रसे ही चित्र स्वयं ही बन जाया करते थे, वह आज हस्तविहीन-सी हो गयी थी। उसका शरीर रोमांचित हो थर-थर काँप रहा था। उससे कृष्णका चित्र नहीं बन रहा था। चित्रा किंकर्तव्यविमूढ हुई चुपचाप बैठ गयी। वह चित्र नहीं बना पानेके कारण लज्जाका अनुभव कर रही थी। उसकी आँखोंसे आँसू निकलना

ही चाहते थे कि कृष्ण उसकी मन:स्थिति भाँपकर बोले—'अच्छा, ठहरो जरा मैं माखन खाकर आता हूँ, तब बनाना मेरा चित्र। उस समय मेरा चित्र हृष्ट-पुष्ट बनेगा, अन्यथा मैं चित्रमें कमजोर-सा दीखूँगा।' कृष्ण चले गये बहाना बनाकर।

चित्रा अकेली रह गयी भवनमें, अब वह अपने आँसुओंके वेगको रोक नहीं पायी। सुबकते-सुबकते न जाने कब वह बेसुध-सी हो गयी या उसकी आँख लग गयी। उसने देखा कि कृष्ण उसके सामने खड़े हैं और उससे कह रहे हैं—'सखी चित्रे! मैं तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। यह सच है कि तुमने हमेशा मुझे अपना आराध्य माना, किंतु साथ ही तुम मेरी प्रियतमा, मेरी सर्वेश्वरी, मेरी शक्ति राधासे ईर्ष्या करती रही। किंतु भद्रे! कदाचित् तुम्हें ज्ञान नहीं कि मैं और राधारानी एक-दूसरेके अभिन्न अंग और पूरक हैं। राधाके बिना, हे चित्रे! मैं अधूरा हूँ, इसलिये ज्ञानी भक्त प्राय: यह कहा करते हैं कि 'राधा बिना कृष्ण आधा' अर्थात् भद्रे! राधाके बिना मेरी भक्तिका कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है और इसी कारण तुम मेरी छबि नहीं बना पा रही हो। चित्रा, यदि तुम्हें मेरा चित्र अंकित करना है तो मेरे इस स्वरूपको अपने हृदयमें स्थान दो।' ऐसा कहकर कृष्णने चित्राको अपने पूर्णस्वरूपका दर्शन कराया। चित्राने देखा कृष्णके शरीरका आधा भाग राधाका है और आधा भाग कृष्णका। चित्राने देखा कृष्णका सम्पूर्ण स्वरूप कभी राधाके स्वरूपमें परिवर्तित हो जाता और कभी कृष्णके स्वरूपमें तथा कभी आधे अंगमें कृष्ण होते और आधेमें राधा।

चित्रा कृष्णकी इस अद्भुत लीलाको देखकर तथा उनके पूर्णरूपको देखकर आश्चर्यचकित रह गयी। उसने स्वयंको धिक्कारा—'अरे, वह जिसे गाँवकी एक साधारण-सी बालिका, ग्वालिन, छोरी समझे बैठी थी, वह तो पराशक्ति है। वह तो कृष्णकी लीला-सहचरी है।'

अचानक उसकी चेतना वापस आयी। उसने सच्चे हृदयसे राधाका आह्वान किया, तुरंत ही उसने देखा चतुर्भुज-रूपमें तेजपुंज लिये राधा उसके सामने खड़ी मुसकरा रही हैं, साथमें खड़े हैं नटखट कन्हैया।

कहना न होगा उसके बाद चित्राने जो कृष्णका चित्र बनाया वह अतिललित, सुन्दर तथा भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण था। आज चित्राकी चित्रांकन-साधना पूर्ण हो गयी थी, आज उसके जीवनमें माधुर्य-रसकी अजस्र धारा प्रवाहित हो उठी थी।

भक्तिमती चित्राके इस वृत्तान्तसे यह स्पष्ट हो जाता है कि निरन्तरके ध्यानाभ्याससे और साधनादार्ढ्यसे भगवान्‌का मिलन सबके लिये सम्भव है। कहा भी है—

यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

राधा

(श्रीशिवचरणजी चौहान)

गैल में छैल के नैन के बान चुभे दिल घायल ह्वै गईं राधा।
काम को श्याम लजाय रहे लखि के रति कायल ह्वै गईं राधा॥
काहू के बांधे जो नाहिं रही सोई श्याम बधायल ह्वै गईं राधा।
प्रीति के पूत का प्रश्रय पाय कै प्रान कै पायल ह्वै गईं राधा॥

× × × ×

नन्द के लाल हैं कृष्ण तो राधा हैं वृषभानु की गोरी लली।
रसिया अलि हैं जो साँवरे श्याम तो राधा हैं रसबोरी कली॥
इक गोकुल गैल को छैल है तो इक है बरसाने की छोरी छली।
कवि कैसे कहै दोऊ हैं एकै कचनार हैं केशव किशोरी कली॥

साधकोंके प्रति—

[वर्णनातीतका वर्णन]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[साधकको चाहिये कि वह एकान्तमें बैठकर शुद्ध वृत्तिसे इस लेखको पढ़े। केवल शब्दोंपर दृष्टि न रखकर अर्थ एवं तत्त्वकी तरफ दृष्टि रखते हुए पढ़े, पढ़कर विचार करे और विचार करके भीतरसे चुप हो जाय तो तत्त्वमें स्वतःसिद्ध स्थिरता जाग्रत् हो जायगी अर्थात् सहजावस्थाका अनुभव हो जायगा[1] और मनुष्यजीवन सफल हो जायगा।]

सत्-तत्त्व एक ही है। उस तत्त्वका वर्णन नहीं होता; क्योंकि वह मन (बुद्धि) और वाणीका विषय नहीं है—**'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तैत्तिरीय० २।९), ***'मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥'***(रा०च०मा० १।३४१।७)। जहाँ वर्णन है, वहाँ तत्त्व नहीं है और जहाँ तत्त्व है, वहाँ वर्णन नहीं है। उस तत्त्वकी तरफ लक्ष्य नहीं है, इसलिये केवल उसका लक्ष्य करानेके लिये ही उसका वर्णन किया जाता है, परंतु जब उसका लक्ष्य न करके कोरा सीख लेते हैं, तब वर्णन-ही-वर्णन होता है, तत्त्व नहीं मिलता। उसका लक्ष्य रखकर वर्णन करनेसे वर्णन तो नहीं रहता, पर तत्त्व रह जाता है। तात्पर्य है कि उसका वर्णन करते-करते जब वाणी रुक जाती है, उसका चिन्तन करते-करते जब मन रुक जाता है, तब स्वतः वह तत्त्व रह जाता है और प्राप्त हो जाता है। वास्तवमें वह पहलेसे ही प्राप्त था, केवल अप्राप्तिका वहम मिट जाता है।

प्रकृतिजन्य कोई भी क्रिया, पदार्थ, वृत्ति, चिन्तन उस तत्त्वतक नहीं पहुँचता। प्रकृतिसे अतीत तत्त्वतक प्रकृतिजन्य पदार्थ कैसे पहुँच सकता है? अतः तत्त्वका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत प्राप्ति होती है। उसकी प्राप्ति भी अप्राप्तिकी अपेक्षासे कही जाती है अर्थात् उसको अप्राप्त माना है, इसलिये उसकी प्राप्ति कही जाती है। वास्तवमें वह तत्त्व स्वतः सबको नित्य-निरन्तर प्राप्त है। अप्राप्तिकी तो मान्यतामात्र है। असत्को सत् माननेसे, अप्राप्तको प्राप्त माननेसे ही वह तत्त्व अप्राप्तकी तरह दीखने लग गया। असत्को जितनी सत्ता देंगे अर्थात् महत्त्व देंगे, उतनी ही उसकी सत्ता दीखेगी और वह तत्त्व अप्राप्त दीखेगा। अप्राप्त दीखनेपर भी वह नित्यप्राप्त है अर्थात् न दीखनेपर भी तत्त्वमें कभी किंचिन्मात्र भी फर्क नहीं पड़ता। यह सिद्धान्त है कि प्राप्ति उसीकी होती है, जो सदासे प्राप्त है और निवृत्ति उसीकी होती है, जिसकी सदासे निवृत्ति है। तात्पर्य है कि मिलेगा वही, जो मिला हुआ है और बिछुड़ेगा वही, जो बिछुड़ा हुआ है। नया कुछ भी मिलनेवाला और बिछुड़नेवाला नहीं है। नया मिलेगा तो वह ठहरेगा नहीं, बिछुड़ ही जायगा।

जितने भी भेद हैं, सब-के-सब प्रकृति (असत्)-में ही हैं। तत्त्वमें किंचिन्मात्र भी कोई भेद नहीं है। जब प्राकृत पदार्थोंकी सत्ता मानते हुए उनको महत्त्व देते हुए उस तत्त्वका वर्णन करते हैं, तब वह तत्त्व केवल बुद्धिका विषय हो जाता है और उसमें भेद दीखने लग जाता है[2]। सभी भेद सापेक्ष होते हैं। अपेक्षा छोड़ें तो कोई भेद नहीं रहता, एक निरपेक्ष तत्त्व रह जाता है। जैसे, दिनकी अपेक्षा रात है और रातकी अपेक्षा दिन है, पर सूर्यमें न दिन है, न रात है अर्थात् वहाँ नित्यप्रकाश है। समुद्रकी अपेक्षा तरंग है और तरंगकी अपेक्षा समुद्र है, पर जल-तत्त्वमें न समुद्र है, न तरंग है[3]। ऐसे ही गुणोंकी अपेक्षासे

१-उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा। कनिष्ठा शास्त्रचिन्ता च तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

२-शास्त्रोंमें तत्त्वका जो वर्णन आता है, वह हमारी दृष्टिसे है। हमने असत्की सत्ता मान रखी है, इसलिये शास्त्र हमारी दृष्टिके अनुसार हमारी भाषामें असत्की निवृत्ति और सत्-तत्त्वका वर्णन करते हैं। यही कारण है कि दृष्टिभेदसे दर्शन अनेक हैं। अनेक दर्शन होते हुए भी तत्त्व एक है। जबतक द्रष्टा, ज्ञाता, दार्शनिक और दर्शन हैं, तबतक तत्त्वके वर्णनमें भेद है। जबतक भेद है, तबतक तत्त्व नहीं है, क्योंकि तत्त्वमें भेद नहीं है। दूसरे शब्दोंमें, जबतक अहम् (जड़-चेतनकी ग्रन्थि) है, तबतक भेद है। अहम्के मिटनेपर कोई भेद नहीं रहता, केवल एक तत्त्व ('है') रह जाता है।

३-ईश्वर और जीवके विषयमें दो तरहका वर्णन है—पहला, ईश्वर समुद्र है और मैं उसकी तरंग हूँ अर्थात् तरंग समुद्रकी है; और दूसरा, मेरा स्वरूप समुद्र है और ईश्वर उसकी तरंग है अर्थात् समुद्र तरंगका है। इन दोनोंमें तरंग समुद्रकी है—यह कहना तो ठीक दीखता है, पर

उस तत्त्वको सगुण-निर्गुण और आकारकी अपेक्षासे उस तत्त्वको साकार-निराकार कहते हैं। वास्तवमें तत्त्व न सगुण है, न निर्गुण है; न साकार है, न निराकार है।

वह एक ही तत्त्व प्रकाश्यकी अपेक्षासे 'प्रकाशक', आश्रितकी अपेक्षासे 'आश्रय' और आधेयकी अपेक्षासे 'आधार' कहा जाता है। प्रकाश्य, आश्रित और आधेय तो व्याप्य, विनाशी एवं अनेक हैं, पर प्रकाशक, आश्रय और आधार व्यापक, अविनाशी एवं एक है। प्रकाश्य, आश्रित और आधेय तो नहीं रहेंगे, पर प्रकाशक, आश्रय और आधार रह जायगा; किंतु प्रकाशक, आश्रय और आधार ये नाम नहीं रहेंगे, प्रत्युत एक तत्त्व रहेगा। तात्पर्य है कि तत्त्व न प्रकाश्य है, न प्रकाशक है; न आश्रित है, न आश्रय है; न आधेय है, न आधार है।

वह एक ही तत्त्व शरीरके सम्बन्धसे शरीरी, क्षेत्रके सम्बन्धसे क्षेत्री तथा क्षेत्रज्ञ, क्षरके सम्बन्धसे अक्षर, दृश्यके सम्बन्धसे द्रष्टा और साक्ष्यके सम्बन्धसे साक्षी कहलाता है। तात्पर्य है कि तत्त्व न शरीर है, न शरीरी है, न क्षेत्र है, न क्षेत्री तथा क्षेत्रज्ञ है; न क्षर है, न अक्षर है; न दृश्य है, न द्रष्टा है; न साक्ष्य है, न साक्षी है।

वह तत्त्व अनेककी अपेक्षासे एक है। जड़की अपेक्षासे वह चेतन है। असत्‌की अपेक्षासे वह सत् है। अभावकी अपेक्षासे वह भावरूप है। अनित्यकी अपेक्षासे वह नित्य है। उत्पन्न वस्तुकी अपेक्षासे वह अनुत्पन्न है। नाशवान्‌की अपेक्षासे वह अविनाशी है। असत्-जड़-दुःखरूप संसारकी अपेक्षासे वह सत्-चित्-आनन्दरूप है। प्राकृत पदार्थोंकी अपेक्षासे वह प्राप्त अथवा अप्राप्त है। कठिनताकी अपेक्षासे उसको सुगम कहते हैं, नहीं तो जो नित्यप्राप्त है, उसमें क्या कठिनता और क्या सुगमता? तात्पर्य है कि तत्त्व न अनेक है, न एक है; न जड़ है, न चेतन है; न असत् है, न सत् है; न अभावरूप है, न भावरूप है; न अनित्य है, न नित्य है; न उत्पन्न है, न अनुत्पन्न है; न नाशवान् है, न अविनाशी है; न असत्-जड़-दुःखरूप है, न सत्-चित्-आनन्दरूप है; न प्राप्त है, न अप्राप्त है; न कठिन है, न सुगम है अर्थात् शब्दोंके द्वारा उस तत्त्वका वर्णन नहीं होता।

वह तत्त्व परतःसिद्धकी अपेक्षासे स्वतःसिद्ध है। अस्वाभाविककी अपेक्षासे वह स्वाभाविक है। अस्वाभाविकतामें स्वाभाविकका आरोप कर लिया तो 'बन्धन' हो गया, स्वाभाविकमें अस्वाभाविकताका आरोप कर लिया तो 'संसार' हो गया और अस्वाभाविकताको अस्वीकार करके स्वाभाविकका अनुभव किया तो 'तत्त्व' हो गया और अतत्त्वसे मुक्ति हो गयी अर्थात् है ज्यों हो गया! तत्त्व न परतःसिद्ध है, न स्वतःसिद्ध है, न स्वाभाविक है, न अस्वाभाविक है। परतःसिद्ध-स्वतःसिद्ध, स्वाभाविक-अस्वाभाविक तो सापेक्ष हैं, पर तत्त्व निरपेक्ष है।

उस तत्त्वको 'है' कहते हैं। वास्तवमें वह 'नहीं' की अपेक्षासे 'है' नहीं है, प्रत्युत निरपेक्ष है। अगर हम 'नहीं' की सत्ता मानें तो फिर उसको 'नहीं' कहना बनता ही नहीं; क्योंकि 'नहीं' और सत्तामें परस्परविरोध है अर्थात् जो 'नहीं' है, उसकी सत्ता कैसे और जिसकी सत्ता है, वह 'नहीं' कैसे? वास्तवमें 'नहीं' की सत्ता ही नहीं है, परंतु जब भूलसे 'नहीं' की सत्ता मान लेते हैं, तब उस भूलको मिटानेके लिये 'यह नहीं है, तत्त्व है' ऐसा कहते हैं। जब 'नहीं' की सत्ता ही नहीं है, तब तत्त्वको 'है' कहना भी बनता नहीं। तात्पर्य है कि 'नहीं'की अपेक्षासे ही तत्त्वको 'है' कहते हैं। वास्तवमें तत्त्व न 'नहीं' है और न 'है' है। गीतामें आया है—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥

'जो ज्ञेय है, उस तत्त्वका मैं अच्छी तरहसे वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य अमरताका अनुभव कर

समुद्र तरंगका है—यह कहना ठीक नहीं दीखता; क्योंकि समुद्र अपेक्षाकृत नित्य है और तरंग अनित्य (क्षणभंगुर) है। अतः तरंग समुद्रकी होती है, समुद्र तरंगका नहीं होता। अगर अपनेको समुद्र और ईश्वरको तरंग मानें तो इस मान्यतासे अनर्थ होगा; क्योंकि ऐसा माननेसे अभिमान पैदा हो जायगा तथा अहम् (चिज्जडग्रन्थि अर्थात् बन्धन) तो नित्य रहेगा और ईश्वर अनित्य हो जायगा! कारण कि जीवमें अनादिकालसे अहम् (व्यक्तित्व)-का अभ्यास पड़ा हुआ है। अतः जहाँ स्वरूपको अहम् कहेंगे वहाँ वही अहम् आयेगा, जो अनादिकालसे है। उस अहम्‌के मिटनेसे ही तत्त्वकी प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त दोनों बातोंके सिवा तीसरी एक विलक्षण बात है कि जल-तत्त्वमें न समुद्र है, न तरंग है अर्थात् वहाँ समुद्र और तरंगका भेद नहीं है। समुद्र और तरंग तो सापेक्ष हैं, पर जल-तत्त्व निरपेक्ष है।

लेता है। वह तत्त्व अनादि और परब्रह्म है। उसको न सत् कहा जा सकता है और न असत् कहा जा सकता है।'[१]

तात्पर्य है कि उस तत्त्वका आदि (आरम्भ) नहीं है। जो सदासे है, उसका आदि कैसे? सब अपर हैं, वह पर है। वह न सत् है, न असत् है। आदि-अनादि, पर-अपर और सत्-असत्का भेद प्रकृतिके सम्बन्धसे है। वह तत्त्व तो आदि-अनादि, पर-अपर और सत्-असत्से विलक्षण है। इस प्रकार भगवान्ने ज्ञेय-तत्त्वका जो वर्णन किया है, वह वास्तवमें वर्णन नहीं है, प्रत्युत लक्षक (लक्ष्यकी तरफ दृष्टि करानेवाला) है। इसका तात्पर्य ज्ञेय-तत्त्वका लक्ष्य करानेमें है, कोरा वर्णन करनेमें नहीं।

संतोंकी वाणीमें भी आया है कि न जाग्रत् है, न स्वप्न है; न सुषुप्ति है, न तुरीय है; न बन्धन है, न मोक्ष है आदि-आदि। कारण कि ये सब तो सापेक्ष हैं, पर तत्त्व निरपेक्ष है। निरपेक्ष भी वास्तवमें सापेक्षकी अपेक्षासे है। तत्त्व भी वास्तवमें अतत्त्वकी अपेक्षासे कहा जाता है; अतः उसको किस नामसे कहें? उसका कोई नाम नहीं है अर्थात् वहाँ शब्दकी गति नहीं है। शब्दसे केवल उसका लक्ष्य होता है[२]।

तत्त्व न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है; न परोक्ष है, न अपरोक्ष है; न छोटा है, न बड़ा है; न अन्दर है, न बाहर है; न ऊपर है, न नीचे है; न नजदीक है, न दूर है; न भेद है, न अभेद है, न भेदाभेद है; न भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्नाभिन्न है। कारण कि ये सब तो सापेक्ष हैं, पर तत्त्व निरपेक्ष है। जैसे सूर्यमें न प्रकाश है, न अँधेरा है और न प्रकाश-अँधेरा दोनों हैं। कारण कि जहाँ प्रकाश है, वहाँ अँधेरा नहीं होता और जहाँ अँधेरा है, वहाँ प्रकाश नहीं होता, फिर प्रकाश-अँधेरा दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं? ऐसे ही तत्त्वमें न ज्ञान है, न अज्ञान है और न ज्ञान-अज्ञान दोनों हैं। वहाँ न ज्ञाता है, न ज्ञान है, न ज्ञेय है; न प्रकाशक है, न प्रकाश है, न प्रकाश्य है; न द्रष्टा है, न दर्शन है, न दृश्य है; न ध्याता है, न ध्यान है, न ध्येय है। तात्पर्य है कि तत्त्वमें त्रिपुटीका सर्वथा अभाव है। कारण कि त्रिपुटी सापेक्ष है, पर तत्त्व निरपेक्ष है। वास्तवमें जहाँ स्थित होकर हम बोलते हैं, सुनते हैं, विचार करते हैं, वहीं सापेक्ष और निरपेक्षकी बात आती है; तत्त्व वास्तवमें न सापेक्ष है, न निरपेक्ष है।

वह तत्त्व वास्तवमें अनुभवरूप है। उसको गीताने 'स्मृति' कहा है—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा**' (१८। ७३)। स्मृति भी विस्मृतिकी अपेक्षासे है; परंतु तत्त्वकी स्मृति विस्मृतिकी अपेक्षासे नहीं है, प्रत्युत अनुभवरूप है। कारण कि स्मृतिकी तो विस्मृति हो सकती है, पर अनुभवका अननुभव (विस्मृति) नहीं हो सकता। तत्त्वकी विस्मृति नहीं होती, प्रत्युत विमुखता होती है। तात्पर्य है कि पहले ज्ञान था, फिर उसकी विस्मृति हो गयी—इस तरह तत्त्वकी विस्मृति नहीं होती[३]। अगर ऐसी विस्मृति मानें तो स्मृति होनेके बाद फिर विस्मृति हो जायगी! इसलिये गीतामें आया है—'**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहम्**' (४। ३५) अर्थात् उसको जान लेनेके बाद फिर मोह नहीं होता। अभावरूप असत्को भावरूप मानकर महत्त्व देनेसे तत्त्वकी तरफसे वृत्ति हट गयी—इसीको विस्मृति कहते हैं। वृत्तिका हटना और वृत्तिका लगना—यह भी साधककी दृष्टिसे है, तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं। तत्त्वकी तरफसे वृत्ति हटनेपर अथवा विमुखता होनेपर भी तत्त्व ज्यों-का-त्यों ही है। अभावरूप असत्को अभावरूप ही मान लें तो भावरूप तत्त्व स्वतः ज्यों-का-त्यों रह जायगा।

१-गीतामें परमात्माका तीन प्रकारसे वर्णन आता है—(१) परमात्मा सत् भी है और असत् भी है—'सदसच्चाहम्' (९। १९), (२) परमात्मा सत् भी है, असत् भी है और सत्-असत्से पर भी है—'सदसत्तत्परं यत्' (११। ३७), (३) परमात्मा न सत् है और न असत् है—'न सत्तन्नासदुच्यते' (१३। १२)। इसका तात्पर्य यही है कि वास्तवमें परमात्माका वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह मन, बुद्धि और शब्दसे अतीत है।

२-यदि कहनेवाला अनुभवी और सुननेवाला सच्चा जिज्ञासु हो तो शब्दके द्वारा शब्दातीत, इन्द्रियातीत तत्त्वका भी ज्ञान हो जाता है—यह शब्दकी विलक्षण, अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव है, परंतु ऐसा होना तभी सम्भव है, जब केवल शब्दोंपर दृष्टि न रखकर तत्त्वकी तरफ दृष्टि रखी जाय। अगर तत्त्वकी तरफ दृष्टि नहीं रहेगी तो सीखनामात्र होगा अर्थात् कोरा वर्णन होगा, तत्त्व नहीं मिलेगा।

३-ज्ञान होनेपर नयापन कुछ नहीं दीखता अर्थात् पहले अज्ञान था, अब ज्ञान हो गया—ऐसा नहीं दीखता। ज्ञान होनेपर ऐसा अनुभव होता है कि ज्ञान तो सदासे ही था, केवल उधर मेरी दृष्टि नहीं थी। यदि पहले अज्ञान था, अब ज्ञान हो गया—ऐसा मानें तो ज्ञानमें सादिपना आ जायगा, जबकि ज्ञान सादि नहीं है, अनादि है। जो सादि होता है, वह सान्त होता है और जो अनादि होता है, वह अनन्त होता है।

अतिथिदेवो भव

(डॉ० श्रीओमप्रकाशजी वर्मा)

भारतीय संस्कृति प्रत्येक गृहस्थको यह सन्देश देती है कि अतिथिको देवतुल्य समझो। सद्‌गृहस्थके लिये अतिथि-सत्कार एक व्रत माना गया है। इस व्रतके पालन करते समय मन इस भावनासे ओत-प्रोत रहता है कि अतिथिके रूपमें स्वयं भगवान् हमारा उद्धार करनेके लिये आये हैं। सनातन परम्परामें गृहस्थके लिये प्रतिदिन पंचमहायज्ञका विधान है, उनमेंसे एक है—मनुष्य यज्ञ, जिसका अर्थ है अतिथि-सत्कार। शायद ही संसारकी किसी अन्य संस्कृतिमें गृहस्थके लिये अतिथिको इतना महत्त्वपूर्ण समझा गया है।

भगवान् वेदव्यास, महात्मा विदुर, महर्षि वसिष्ठ, मार्कण्डेय आदिने अतिथि-सत्कारके महत्त्वको विभिन्न भावोंमें समझाया है, जिसका सार यह है कि आये हुए अतिथिको प्रेम-भरी दृष्टिसे देखें, उसके साथ मृदु भाषण करें, बैठनेके लिये आसन दें, शीतल जल पिलायें तथा सामर्थ्यके अनुसार भोजन करायें। जब अतिथि जाने लगे कुछ दूरतक उसके साथ चलकर सम्मानपूर्वक विदा करें।

दुर्भाग्यकी बात है कि वर्तमान समयमें एकल-परिवारकी प्रवृत्ति, व्यस्त जीवन-शैली, स्वार्थपरायणता, खण्डित होते सामाजिक सम्बन्ध आदिके कारण अतिथि-सत्कारका महत्त्व लुप्त होता जा रहा है।

क्या समाजमें बढ़ती हुई इस दुष्प्रवृतिको रोकनेके लिये हमारे शास्त्रोंमें अतिथि-सत्कारके लिये दिये गये सन्देश कुछ सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं? प्रस्तुत है इस विषयपर शास्त्र और संतोंके कुछ कथन।

❁ अतिथि-सेवा देव-सेवा ही है। उसके प्रसन्न होनेपर देवगण प्रसन्नतापूर्वक कल्याण करते हैं।

❁ अतिथि साक्षात् पिनाकधारी शिवका स्वरूप होता है, अत: सब कुछ अर्पित करके भी अतिथि की पूजा करें।

❁ जब विद्वान् और व्रती अतिथि घरपर आये तब गृहस्थको स्वयं उसकी अगुवाई करनी चाहिये। सेवकोंके ऊपर अतिथि-सेवाका कार्य नहीं छोड़ना चाहिये।

❁ जहाँ अतिथिका आदर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं।

❁ गृहस्थको चाहिये कि अतिथिकी निन्दा नहीं करे। अतिथि सुन्दर रूपवाला हो या कुरूप, मलिन हो या मूर्ख, उसका सदैव सत्कार करना चाहिये।

❁ जिस घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अतिथि उस गृहस्वामीको अपने पाप दे जाता है तथा गृहस्वामीके पुण्य ले जाता है।

❁ अपने घरपर आते हुए बड़े या छोटेको देखकर जो छोटा बनकर नम्रता धारण करता है, वही बड़ा है।

काशीमें देवियोंके मन्दिर और उनकी यात्रा

(पं० श्रीशालिग्रामजी शर्मा)

जिस प्रकारका घनिष्ठ सम्बन्ध पिण्डाण्डका ब्रह्माण्डसे है, वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध काशीका समस्त भारत-वर्षसे है। हिन्दूधर्मके जितने तीर्थ हैं, जितने देवता हैं, जितने मत हैं—वे सब-के-सब काशीमें येन केन प्रकारेण अविकलरूपसे उपस्थित हैं। यद्यपि काशी त्रिपुरारि-राजनगरी है तथापि यहाँ सभी देवताओंके मन्दिर हैं और वे सब यथासमय नित्य और नैमित्तिकरूपसे माने और पूजे जाते हैं। अत: इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि यहाँ देवियोंके अनेक प्राचीन और अर्वाचीन मन्दिर हैं। अर्वाचीन मन्दिर हम उन्हें कहते हैं, जिनका उल्लेख काशीखण्ड आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं आया है। इस लघुकाय लेखमें हम प्राचीन मन्दिरोंका ही वर्णन देनेवाले हैं। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इन अर्वाचीन मन्दिरोंमें भी अनेक मन्दिर बहुत अच्छे और प्रसिद्ध हैं। इनमें दशाश्वमेधकी कालीजी, संकटाघाटपर पीताम्बरा, पंचगंगाघाटपर गायत्री देवी, महाराजा अमेठीद्वारा स्थापित बालात्रिपुरसुन्दरी, रानी भवानीद्वारा स्थापित तारा देवी आदि विशेष उल्लेखके योग्य हैं।

देवियोंके प्राचीन मन्दिर जितने काशीमें हैं, उन सबका यथोचित वर्णन बिना विस्तारके असम्भव है।

इसलिये उनमेंसे चुनकर कुछ प्रधान-प्रधानका वर्णन संक्षेपसे हम नीचे देते हैं

अन्नपूर्णादेवी—यह काशीके सबसे प्रसिद्ध स्थानोंमें है। यही महागौरीके नामसे प्रसिद्ध है। इनका मन्दिर विश्वनाथजीके पास ही है। यों तो इनका दर्शन नित्य ही किया जाता है तथापि नवरात्रमें विशेषकर अष्टमीके दिन इनके दर्शनका विशेष माहात्म्य है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदके दिन अन्नकूट-महोत्सव भी बड़े समारोहके साथ मनाया जाता है। दर्शकोंकी अपार भीड़ उस दिन एकत्र हो जाती है।

दुर्गादेवी—यह भी बहुत प्रसिद्ध है। वह विश्वविद्यालयके मार्गपर स्थित है। मन्दिरके उत्तर ओर एक विशाल पक्का तालाब है, जो दुर्गाकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। नवरात्रमें, श्रावणमासमें तथा प्रति भौमवारको यहाँ मेला-सा लगा रहता है।

महालक्ष्मी—महालक्ष्मीजीका मन्दिर लक्शाके समीप लक्ष्मीकुण्ड मुहल्लेमें है। इस मुहल्लेका नाम यहाँके तालाबके नामसे पड़ा हुआ है। यह तालाब लक्ष्मीजीके मन्दिरके नीचे है। भाद्र शुक्ल अष्टमीसे आश्विन कृष्ण अष्टमीतक सोलह दिवस लक्ष्मीजीका मेला होता है, जो सोरहियाके नामसे प्रसिद्ध है। इस अवसरपर बहुत-सी वस्तुओंका विक्रय होता है। मिट्टीके पात्र यहाँके बहुत प्रसिद्ध हैं।

चतुःषष्ठी—यह मन्दिर चौसट्ठी घाटपर है। होलीके दूसरे दिन यहाँ बड़ा मेला होता है, उसको धुरड्डीका मेला कहते हैं। समस्त नगरके लोग उमड़ पड़ते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक देवियोंके मन्दिर काशीमें विराजमान हैं; जैसे लक्ष्मणबालाघाटपर मंगला-गौरी, ललिताघाटपर ललितादेवी; धर्मकूपके समीप विशालाक्षी देवी इत्यादि। अब हम इनको छोड़कर कुछ देवीयात्राओंका वर्णन देते हैं। यहाँकी देवीयात्राओंमें दो यात्राएँ बहुत प्रसिद्ध हैं—

नवगौरीयात्रा तथा नवदुर्गायात्रा

नवगौरीयात्रा—यह यात्रा शुक्ल पक्ष द्वितीयाको प्रतिमास करनी चाहिये। नवगौरियोंके नाम और उनके स्थान नीचे दिये जाते हैं—

नाम—	स्थान—
(१) मुखनिर्मालिकागौरी	गायघाटके ऊपर हनुमान्जीके मन्दिरमें हैं।
(२) ज्येष्ठागौरी	कर्णघण्टा महल्लेमें ज्येष्ठेश्वर महादेवके समीप।
(३) सौभाग्यगौरी	विश्वनाथजीके मन्दिरमें।
(४) शृंगारगौरी	विश्वनाथजीके मन्दिरमें।
(५) विशालाक्षीगौरी	मीरघाटपर।
(६) ललितागौरी	ललिताघाटपर।
(७) भवानीगौरी	कालिकागलीमें।
(८) मंगलागौरी	लक्ष्मणबालाघाटपर।
(९) महालक्ष्मी	लक्ष्मीकुण्डपर।

नवदुर्गायात्रा—यह यात्रा नवरात्रके नौ दिनोंमें क्रमसे की जाती है। नवों दुर्गाओंके नाम तथा स्थान नीचे दिये जाते हैं—

नाम—	स्थान—
(१) शैलपुत्री	अलईपुर स्टेशनके उत्तर वरणा नदीके तटपर स्थित है।
(२) ब्रह्मचारिणी	दुर्गाघाटपर।
(३) चन्द्रघण्टा	चौकके पूर्व एक गलीमें।
(४) कूष्माण्डदुर्गा	दुर्गाकुण्डपर प्रसिद्ध दुर्गाजी।
(५) स्कन्दमाता	जैतपुराके समीप बाघेश्वरीके नामसे प्रसिद्ध हैं।
(६) कात्यायनी	संकटाघाटके पास आत्म-वीरेश्वरके मन्दिरमें।
(७) कालरात्रि	कालिकागलीमें।
(८) महागौरी	यही अन्नपूर्णाजीके नामसे प्रसिद्ध हैं।
(९) सिद्धिदात्री	सिद्धमाताकी गलीमें अथवा सिद्धेश्वरीमहालमें।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक देवीयात्राएँ काशीमें हैं, किंतु वे इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं।

महारसायन

(श्रीसीतारामदासजी ओंकारनाथ)

'राम-राम सीताराम! मैं दिन-रात नाम-रसायन पान करना चाहता हूँ। मैं निश्चय कर चुका हूँ, कि नाम लेनेसे सर्वार्थ-सिद्धि होगी। यह मेरा दृढ़ सिद्धान्त हो गया है कि मेरे-जैसे क्षुद्र जीवके लिये नामके अतिरिक्त और कोई गति नहीं है। यही मार्ग मैंने पकड़ा है और इसी मार्गपर चल रहा हूँ। जिससे पथभ्रष्ट न हो जाऊँ, इसीलिये मैंने शक्ति-प्रार्थना करना सीखा है। फिर भी हे राम! मैं प्रतिक्षण नाममें तल्लीन नहीं रह सकता। न जाने मेरा कौन-सा कर्मफल मुझे नाम लेनेसे हटा देना चाहता है। तुम कृपा करो—मुझे निरन्तर अपने नाममें डुबाये रखो। हे यदुनाथ! हे रघुनाथ! हे व्रजनाथ! हे सीतानाथ! हे दीननाथ! हे प्राणनाथ! ऐसा करो कि मैं सदा-सर्वदा नाम लेकर रह सकूँ, मुझे अपना बना लो।'

'सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः।
न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः॥

कोई डर नहीं है! मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता। सब नाश हो जायगा, परंतु मेरा भक्त निःशंक और निरापद अवस्थामें रहेगा। देखो, जीवको तभीतक सोचना पड़ता है जबतक कि वह दृढ़रूपसे मेरा आश्रय नहीं ले लेता। मैं तुम्हारा हूँ—यह कहकर मेरे शरण आ जानेपर सदाके लिये सारी चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं। एक बार निरुपाय होकर, मैं तुम्हारा हूँ, यह कहकर मेरे शरण आनेपर मैं सब भूतोंको अभय देता हूँ। तुम क्यों डर रहे हो? तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं है। मैं तुम्हारे मार्गको साफ करता हुआ आगे-आगे चल रहा हूँ, तुम नाम लेते हुए मेरे पीछे-पीछे चले आओ। मेरे भक्त, मनुष्यकी तो बात ही क्या, यमराजतकका भी भय नहीं करता।

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

चले आओ—राम-रामका गर्जन करते हुए तुम चले आओ। जिस कर्मबीजके कारण तुम्हारा पुनः-पुनः जन्म होना नहीं बन्द होता है, वही कर्मबीज, राम-रामके गर्जनसे जल जायगा, तुम्हारे न चाहनेपर भी राम-रामके गर्जनसे संसारकी सुख-सम्पदा तुम्हारे पैरोंपर लोटने लगेगी और क्या होगा जानते हो? राम-रामके गर्जनसे यमदूतोंका भी तिरस्कार होता है। वे राम-रामके गर्जनसे डरकर तुम्हारे पास नहीं आ सकेंगे। तुम राम-राम भजो। केवल नाम लो। नाम लो—चाहे अवहेलनासे लो, श्रद्धासे लो, भक्तिपूर्वक लो, अभक्तिसे लो, खड़े-खड़े लो, बैठकर लो, लेटे हुए लो, चलते हुए लो, भोजन करते हुए लो, सुखमें लो, दुःखमें लो, हर्षमें लो, विषादमें लो, अभावमें लो, सम्पन्नावस्थामें लो, रोगमें लो, नीरोगमें लो, शोकमें लो, विशोकमें लो, चंचलतामें लो, स्थिरतामें लो, स्वजनमें लो, विजनमें लो, प्रकाशमें लो, अन्धकारमें लो, विक्षेपमें लो, अविक्षेपमें लो, लयमें लो, अलयमें लो। बस, सब समय सभी स्थितियोंमें रामका नाम लो। फिर अब जो द्वन्द्व देखते हो, वह कुछ भी नहीं रहेगा। रहेगा केवल नाम। अधिकसे क्या आवश्यकता? अब आरम्भ करो।'

'ठीक है, यही करूँगा, तुम्हारा नाम ही लूँगा—'राम राम जय राम।'

निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु स्त्रीसुतादयः।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा॥
सेवे सेवे पुनः सेवे त्वामेव परदेवते।
त्वत्कर्म नैव मुञ्चामि मनोवाक्कायकर्मभिः॥

रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम॥

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल। सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

जिनका नाम जन्म-मरणरूपी रोगकी [अव्यर्थ] औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों)-को हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी मुझपर और आपपर सदा प्रसन्न रहें।

हिन्दू संस्कृतिमें जलके प्रति पूज्य भाव

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

'अमृत' संज्ञाधारी जल पंचभूतोंका मुख्य घटक है। सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति एवं स्थिति जलसे ही सम्भव है। हमारे शरीरका ७० प्रतिशत भाग जल ही है। भारतीय धर्म एवं संस्कृतिमें प्रत्येक पर्व, उत्सव एवं अनुष्ठानमें निकटस्थ नदी, सरोवर एवं निर्झरमें स्नान करनेकी प्रथा है। जलको पृथ्वीका प्रधान रत्न माना गया है—

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥

अर्थात् 'पृथ्वीपर जल, अन्न एवं मीठी वाणी—ये तीन ही रत्न हैं। मूढ़ व्यक्ति ही पत्थरके टुकड़ोंको रत्नके नामसे पुकारते हैं।'

सनातन धर्ममें प्रत्येक कार्य करनेके पूर्व जलसे स्नान करनेका विधान है। सहस्र कार्य छोड़कर पहले स्नान करनेका शास्त्रीय निर्देश है—'**शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।**' इसी प्रकार सन्ध्या, दान, देवपूजन, पितृपूजन तथा अन्य कोई सत्कार्य करनेसे पूर्व आचमन करनेका विधान है। आचमनसे स्वयंकी शुद्धि तो होती ही है साथ ही ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी तृप्ति प्राप्त करते हैं—

एवं स ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स परितर्पयेत्॥

(व्याघ्रपाद)

स्नान एवं सन्ध्या आदि धार्मिक कार्योंके पूर्व संकल्प करना आवश्यक है। इस प्रक्रियामें जलको दायें हाथमें लेकर संकल्प किया जाता है। वस्तुतः जलको देवता मानकर उसके साक्ष्यमें की गयी प्रतिज्ञा ही संकल्प है। पवित्रताकी दृष्टिसे सापेक्षतः कुँएके जलसे झरनेका, झरनेके जलसे सरोवरका, सरोवरके जलसे नदीका, नदीके जलसे तीर्थका एवं गंगाका जल तो सबसे अधिक श्रेष्ठ होता है—

भूमिष्ठमुद्धृतात् पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्।
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते।
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः॥

(अग्निपुराण १५५।५-६)

जल महाभूतके गुण-कर्मोंका आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें निम्न रूपमें उल्लेख किया गया है—

द्रवस्निग्धशीतमन्दमृदुपिच्छिलरसगुणबहुलान्याप्यानि,
तान्युपक्लेदस्नेहबन्धविष्यन्दमार्दवप्रह्लादकराणि ।

(च० सूत्र० २६।११)

आप्यास्तु—'**रसो रसेन्द्रियं सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च।**' (सुश्रुत)

इन कथनोंका तात्पर्य यह है कि जल महाभूत प्रधान द्रव्य शरीरमें द्रवत्व उत्पन्न करनेवाले, स्निग्ध, शीत, मृदु, पिच्छिल, गुरु, खर, सान्द्र, स्तम्भ, किंचित् कषाय एवं लवणरसयुक्त, परंतु मुख्यत्वेन मधुर रसवाले तथा रस गुणवाले होते हैं। जलका उपयोग करनेसे शरीरमें क्लेद, स्निग्धता, बन्ध, द्रवस्राव, मृदुता तथा शरीर, मन और इन्द्रियोंकी तुष्टि होती है।

वैशेषिकोंने जल महाभूतके दो रूप माने हैं— परमाणु रूप एवं स्थूल रूप। सांख्य दर्शनमें परमाणु रूपको तन्मात्रा एवं स्थूल रूपको महाभूत कहा गया है।

स्नानका महत्त्व शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर प्रतिपादित किया गया है। स्नानसे रूप, तेज, बल, पवित्रता, आयु, आरोग्य, निर्लोभता, दुःस्वप्ननाश, तप और मेधा—ये दश गुण प्राप्त होते हैं—

गुणा दश स्नानपरस्य साधो! रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशश्च तपश्च मेधा॥

स्नानान्तर सन्ध्या, देवतर्पण, ऋषितर्पण एवं पितृतर्पण भी जलसे ही किये जाते हैं। महर्षि अत्रिने कहा है कि नित्य सन्ध्या करनेसे अज्ञानवश किये गये विकर्म नष्ट हो जाते हैं। सन्ध्या करनेवाला पापरहित होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। सन्ध्यामें पवित्रीकरणहेतु

मार्जन करते हुए निम्न मन्त्रका उच्चारण किया गया है—

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन।
ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः।

(यजुर्वेद ११। ५०)

इस वैदिक मन्त्रका भाव यह है कि 'हे जल! तुम ही सुखको प्रदान करनेवाले हो। वही तुम हम लोगोंको रसका उपभोग करनेके लिये समर्थ बना दो।' यजुर्वेदमें ही बहुत सुन्दर कामना की गयी है—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।

(यजुर्वेद २०। २०)

अर्थात् पादुकासे अलग हुए की तरह, पसीनेसे भीगे हुए व्यक्तिके स्नान करनेसे मैलमुक्त होनेकी तरह, वस्त्रसे छानकर शुद्ध किये हुए घीकी तरह जल मुझे शुद्ध करे अर्थात् पापसे मुक्त करे।

कात्यायनसूत्रमें भी जलकी महनीयता दृष्टिगत होती है—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥

अर्थात् हे जलदेवता! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर हृदयमें विचरते हो। तुम्हारा मुँह सब तरफ है। तुम ही यज्ञ, हविष्य, द्रव, प्रकाश एवं अमृत हो।

गीतामें भगवान् स्वयं जलसे प्रसन्नताकी अनुभूति करते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

'जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ पत्र-जल आदि मैं सगुण रूपमें प्रकट होकर प्रीतिसहित ग्रहण करता हूँ।' यहाँ विदुर, सुदामा, द्रौपदी, शबरी, रन्तिदेव आदिको उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दू धर्मके ग्रन्थोंमें जलकी महिमाका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। निम्न जलस्तुति भी पठनीय है—

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।
किं वातः परमुच्यते स्तुतिपदं यज्जीवनं देहिनां
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः॥

'शीतलता तेरा नाम एवं जन्मजात गुण स्वाभाविक स्वच्छता है। तेरी पवित्रताका तो कहना ही क्या? तेरे स्पर्शमात्रसे अन्य सभी पवित्र हो जाते हैं। इससे अधिक और क्या कहें—क्योंकि तुम प्राणियोंके साक्षात् जीवन ही हो, अतः सभीके द्वारा वन्दनीय भी हो। हे जल! तुम यदि निम्नगामी हो तब भी तुम्हें रोकनेमें कौन सक्षम है?'

आयुर्वेदीय शास्त्रोंमें रोगनिवारक एवं बलकारक द्रव्योंकी सूचीमें वर्षाके जलका समावेश किया गया है। **'सर्वेषामनुपानानां तोयं माहेन्द्रमुत्तमम्'** कहकर यह स्पष्ट किया है कि पानीय पदार्थों एवं औषधिके अनुपानरूपमें अन्तरिक्षका जल सर्वोत्तम होता है। चरकने हिमालयसे निकलनेवाले जलको पथ्य अर्थात् गुणकारी माना है, इसमें विशेषतः गंगाजलका ही संकेत है। अठारहवीं शताब्दीके एक हस्तलिखित ग्रन्थमें गंगाजलके गुणोंका सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है—

शीतं स्वादु स्वच्छमत्यन्तरूच्यं पथ्यं पाचनं पापहारि।
तृष्णामोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्॥

'भोजनकुतूहल' नामक उस ग्रन्थमें कहा गया है कि गंगाका जल श्वेत, स्वादु, स्वच्छ, अत्यन्त रुचिकर, पथ्य, भोजन पकानेयोग्य, पाचनशक्ति बढ़ानेवाला, सब पापोंको हरनेवाला, तृष्णानाशक, मोहनिवारक, अग्निदीपक एवं बुद्धिवर्धक होता है।

इस प्रकार हिन्दू संस्कृतिमें जलका महत्त्व अतुलनीय है। सनातन धर्मकी जलसे घनिष्ठता चिरंतन एवं नैत्यिक है। इसी कारण संस्कृत भाषामें जलको अमृत, पय, जीवन, भुवन, पुष्कर, सर्वतोमुख, क्षीर, नीर, तोय आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

भगवद्‌गीता-विज्ञान

[भगवद्‌गीताके वैज्ञानिक स्वरूपको बताता आलेख]

(श्रीसुमितचन्द्रजी श्रीवास्तव, एम० एस-सी०)

इस सृष्टिमें तीन सबसे रहस्यमय घटनाएँ हैं—जीवन, जीवनकी उत्पत्ति और जीवनकी मृत्यु। इन तीन घटनाओंको विज्ञान आजतक नहीं बता पाया। जीवन और जीवनकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ मत तो हैं, पर मृत्युके विषयमें कुछ भी नहीं है; क्योंकि विज्ञानकी कुछ सीमाएँ हैं, जैसे न तैरना जाननेवालेकी सीमा नाव ही है, वह नदीमें नहीं जा सकता।

विज्ञानकी सीमाओंको तोड़ती है 'भगवद्‌गीता' जो लगभग प्रत्येक हिन्दू घरके पूजागृहमें होती है और पूजा-योग्य मानी जाती है, पर क्या ये केवल हिन्दुओंके लिये है? नहीं, ये प्रत्येक मानवके लिये है। किसी भी मानवके जीवनका स्वरूप क्या होना चाहिये बताती है—भगवद्‌गीता।

मनुष्यकी बुद्धिकी सीमा है। वह बड़े एवं छोटे और शुरू और अन्तके बीच ही सब कुछ समझती है, इसलिये इन्हींके बीच विज्ञान समाया है। मृत्युके बाद क्या होता है, नया जन्म कैसे होता है—ये सब बातें हमें बुद्धिकी क्षमता और सीमा बढ़ाकर ही पता चलेंगी, परंतु जो बातें बुद्धिकी सीमाके अन्दर हैं, उन्हें विज्ञानकी कसौटीपर कसा जा सकता है। सचमुच ये चौंकानेवाली बात है कि जो नियम भौतिक विज्ञानकी जड़ है, उसे श्रीकृष्णने तर्कसंगत रूपसे ५ हजार साल पहले बताया था और उसे हम भौतिक विज्ञानमें ऊष्मागतिकीका नियम कहते हैं। ऊष्मागतिकीके नियमको गीताके ज्ञानकी कसौटीपर कसते हैं तो जो तथ्य प्राप्त होते हैं, वे ये हैं—

ऊष्मागतिकीका प्रथम नियम ऊर्जा संरक्षणका नियम है और श्रीकृष्णका आत्माकी अमरताका नियम भी यही कहता है। ऊष्मागतिकीका प्रथम नियम कहता है कि 'ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट। ये केवल स्वरूप बदलती है।' जैसे पंखेमें वैद्युत ऊर्जा गतिज ऊर्जामें परिवर्तित होकर हमें हवा देती है, पर नष्ट नहीं होती। ऊष्मागतिकीका ये नियम ऊर्जाके सभी रूपोंके लिये लागू होता है। ये विभिन्न रूप हैं गतिज ऊर्जा, स्थितिज ऊर्जा, वैद्युत ऊर्जा आदि।

आत्मा नाम सुनकर बहुत लोगोंको डर लगता है, पर ये भी ऊर्जाका एक रूप है, जो हमें निर्जीव चीजोंसे अलग करता है। इसी ऊर्जासे हम जीवित हैं, ये नहीं तो हम निर्जीव, जैसे एक खिलौनेसे सेल या बैटरी निकाल दें तो वह नहीं चलेगा; क्योंकि उसकी ऊर्जाका स्रोत निकल जाता है। अतः आत्मा एक ऊर्जा है और इसी ऊर्जाके संरक्षणका नियम श्रीकृष्णने दिया 'आत्मा (ऊर्जा)-को न अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है, न वायु सुखा सकती है अर्थात् ऊर्जाको नष्ट नहीं किया जा सकता। ये केवल शरीर बदलती है अर्थात् स्वरूप बदलती है। ऊपर ऊष्मागतिकीके प्रथम नियमपर दृष्टि डालिये, क्या ये दोनों नियम एक नहीं? अवश्य एक हैं फिर भी श्रीकृष्णके इस नियमको भौतिक विज्ञानमें स्थान प्राप्त नहीं।

ऊष्मागतिकीका द्वितीय नियम कहता है कि प्रत्येक तन्त्र ऊर्जा मुक्त करता है ताकि वह सन्तुलित अवस्थामें आ जाय। तन्त्रसे तात्पर्य उस व्यवस्थासे है, जिसमें प्रत्येक भाग मिलकर कार्य करते हैं। जैसे हमारा शरीर एक तन्त्र है, कम्प्यूटर एक तन्त्र है, ये ब्रह्माण्ड भी एक तन्त्र है।

ऊष्मागतिकीका द्वितीय नियम यही कहता है कि प्रत्येक तन्त्र जितनी ज्यादा ऊर्जा मुक्त करता है, उतनी ही स्थायी अवस्थामें आता है और इसीके साथ ही तन्त्रमें लचीलापन आता है।

ऊष्मागतिकीका द्वितीय नियम और श्रीकृष्णका कर्मका नियम। श्रीकृष्णने गीतामें कहा है निष्काम कर्मद्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है और जीवन सार्थक होता है और इसीको आगे कहा शरीरका प्रथम कर्तव्य ही कर्म करना है।

अर्थात् ये शरीर (एक तन्त्र) ऊर्जा मुक्त करके (अर्थात् कर्म करके; क्योंकि ऊर्जा मुक्त करके ही कर्म किया जा सकता है) सन्तुलित अवस्था (मोक्ष या मुक्ति) प्राप्त कर सकता है अर्थात् ऊष्मागतिकीका द्वितीय नियम भी श्रीकृष्णका दिया हुआ है। क्या फर्क पड़ता है कि वे ऊर्जा मुक्त करना कहें या कर्म करना, सन्तुलित अवस्था कहें या मोक्ष; जैसे हम साइंसको विज्ञान कहते हैं अर्थ तो वही होता है।

इस विश्लेषणसे बहुत-से लोग सोचेंगे कि मैं रोज इतनी चोरियाँ करता हूँ, उतना लूटता हूँ, इतना कत्ल करता हूँ, ये भी कर्म हैं; मेरे भी शरीरको और उससे जुड़े आत्माके तन्त्रको सन्तुलित अवस्था या मोक्ष प्राप्त होगा; परंतु ऐसा नहीं है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णद्वारा बताया गया कर्म अपने लाभके लिये नहीं, अपितु निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म करनेसे ही उपर्युक्त अवस्थाकी प्राप्ति होती है।

हम इस प्रकृतिका एक भाग हैं और इसके विरुद्ध हम कुछ भी करें, हमें सन्तुलित अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। सूर्यकी ऊर्जा हो या बादलोंकी वर्षा, वे अपनी ऊर्जाका प्रयोग बिना भेदभावके समाजके कल्याण एवं पोषणके लिये करते हैं। प्रकृतिका भाग होनेके कारण जब हम उसीकी तरह अपनी ऊर्जा या कर्मका प्रयोग समाजके कल्याणके लिये करते हैं तभी हमारे तन्त्र और उससे जुड़ी आत्माको स्थायी अवस्था या मोक्ष प्राप्त हो सकता है और इसीको विज्ञान ऊष्मागतिकीका द्वितीय नियम कहता है और श्रीकृष्ण गीतामें निष्काम कर्म।

सरलता और आनन्द

(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल एम०ए०)

सरलता ही आनन्दका मूल स्रोत है। सरलता ही शक्तिका केन्द्र है। सरलता भगवान्को प्यारी है। जैसे-जैसे बालक चतुर होता जाता है, निजानन्दको खोता जाता है। आनन्दपूर्वक जीवित रहनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको बालभाव प्राप्त करना तथा बालकोंमें मिलना आवश्यक है। बच्चोंसे हरेक व्यक्ति प्रसन्न रहता है। बड़े-बड़े सांसारिक जटिल कार्य करनेवाले लोग, जिनका उत्तरदायित्व असीम रहता है, अपना थोड़ा-सा समय बच्चोंके साथ व्यतीत करनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं। बच्चे उनमें नवजीवनका संचार कर देते हैं।

इंग्लैण्डके राजा अलफ्रेडके बारेमें यह कथा प्रसिद्ध है कि वह किसी-किसी दिन गुप्तरूपसे अपना राज्यका कार्य छोड़कर एक गरीब बुढ़ियाके यहाँ चला जाता था। उसकी संरक्षकतामें दो शिशु रहते थे, राजा उन बालकोंके साथ खेलता था। उनके आनन्द-विनोदको बढ़ाता था। कभी-कभी अलफ्रेड स्वयं घोड़ा बनकर पैरों और हाथोंसे चलने लगता था और बच्चे उसके ऊपर सवार होते थे। इस प्रकार अलफ्रेड बच्चोंके साथ असीम आनन्दका उपभोग करता था। जो आनन्द राज्यका इतना बड़ा अधिकार प्राप्त करनेमें नहीं था, वही बच्चोंकी संगतिमें उसको सुलभ हो गया।

बच्चोंकी ओर हम आकर्षित क्यों होते हैं? इसका कोई बौद्धिक उत्तर देना कठिन है। यह हमारे अव्यक्त मनकी प्रेरणा है। अज्ञातरूपसे वह हमें सरलता और स्फूर्तिकी ओर ले जाती है। बालकमें सरलता, स्फूर्ति और आनन्द भरपूर होता है। बस, यही वस्तुएँ हमें उसकी ओर खींच लेती हैं। हमारा सहज स्वरूप सरलता, स्फूर्ति और आनन्दमय है। बालक हमें अपने स्वरूपका स्मरण करा देते हैं। उसी असीम आनन्दकी ओर हमें ले जाते हैं।

महात्मा ईसाने कहा है—'जबतक तुम बच्चे-जैसे नहीं बन जाओगे, तबतक परमात्माकी प्राप्ति कभी नहीं होगी।' हमारा सांसारिक जीवन निरानन्दमय होता है। अतएव वह हमें आत्मस्थितिमें अथवा आत्मानन्दसे दूर ही ले जाता है।

बालककी संगति यदि बोधपूर्वक की जाय तो वह अवश्य परमानन्द और आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक होगी। मनुष्य अपने साधारण व्यवहारमें कपट-छलसे प्रेरित रहता है। हमारी आत्मा इस प्रकारके अनुभवोंसे

पीड़ित हो उठती है। हम सचाईको ढूँढ़ना चाहते हैं। असत् व्यवहार बालकके स्वभावके प्रतिकूल है। बालकका जीवन सद्भावनामय होता है, अतएव उसका दर्शनमात्र मनुष्यको पवित्र करता है।

हम अपने मित्रों और संसारके व्यक्तियोंमें जो बहुत शिष्टाचार पाते हैं। वह प्रायः छलमय होता है। हम स्वयं इसी प्रकारका छलमय व्यवहार संसारमें करते हैं। इसी प्रकारके व्यवहारसे हमारा हृदय आक्रान्त हो उठता है। बालकके हृदयमें कपट-व्यवहारके लिये स्थान नहीं। अतएव वह सदा आनन्दसमुद्रमें निमग्न रहता है।

मनुष्यकी सभ्यताका दूसरा नाम छल है। सभ्यता कपट-व्यवहारका विकसित रूप है। रूसो महाशयने अपने एक लेखमें यही दिखलाया है कि जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती जाती है, मनुष्यके सदाचारका नाश होता है। जो मनुष्य जितना सभ्य और शिष्ट कहलाता है, वह प्रायः उतना ही असद्व्यवहार करनेवाला और धूर्त्त होता है।

रूसोका दृष्टिकोण महात्माओं, कवियों और तत्त्वज्ञानियोंका दृष्टिकोण है। कवि सरल-हृदय होता है। कविता गंगाजीकी पवित्र धाराके समान कविके हृदयरूपी स्वच्छ मानसरोवरसे निकलती है। कविता दलदलकी उपज नहीं, संसारके आघात-प्रतिघातसे विकृत बुद्धि कविताका उद्गमस्थान नहीं बन सकती। सरलता, सहानुभूति और सद्व्यवहार—सबका स्रोत एक है। सरलता महात्माओंका गुण है, सहानुभूति कवियोंका और सद्व्यवहार तत्त्वज्ञानियोंका। वास्तवमें तीनों गुण एक ही तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम हैं।

मनुष्य चतुर बनकर कुछ भी स्थायी लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। चतुर मनुष्य सांसारिक व्यवहारमें कुशल होता है, किंतु वह आत्मज्ञानसे वंचित रहता है। इस प्रकारके मनुष्यसे उसके आसपास रहनेवाले लोग भयातुर अवश्य रहते हैं, किंतु वह प्रेमका पात्र नहीं हो पाता। ऐसे मनुष्यके हृदयमें किंचिन्मात्र भी आनन्द नहीं रहता। वह जहाँ जाता है, वहीं अपने आसपासके व्यक्तियोंमें शंका, भय और चिन्ताका संसार निर्माण कर देता है। जिस तरह बालक अपनी सरलतासे आसपासके लोगोंको सन्तुष्ट करता है, जिस प्रकार एक-एक खिला हुआ फूल देखनेवालोंके मनको खिला देता है, उसी प्रकार सरल स्वभाववाला आदमी सदा अपने-आप प्रसन्न रहता है और उस प्रसन्नताका दान दूसरोंको भी दिया करता है। इसके विपरीत चतुर मनुष्य दूसरे लोगोंको चतुर बनाता है और इस तरह उनके हृदयको संकुचित और कपटसे कलुषित कर देता है। अंगरेजीमें एक कहावत है—'स्वास्थ्य उतना ही संक्रामक है, जितनी कि बीमारी।' बीमार आदमी सबमें बीमारी फैलाता है और स्वस्थ मनुष्य स्वास्थ्य। इसी तरह जिस मनुष्यका जीवन संसारमय है, वह अपने सम्पर्कसे दूसरोंको संसारी बनाता है और जिसका जीवन परमार्थमें लगा हुआ है, वह दूसरोंके मनमें भी परमार्थकी भावनाको दृढ़ करता है।

सूडानमें गोमाताकी पूजा-अर्चना

दक्षिणी सूडानकी मुंदारी प्रजातिके आदिवासी गाय और बैलोंसे बहुत प्यार करते हैं और उन्हें अपने परिवारका हिस्सा मानते हैं। गायकी पूजा करते हैं और उन्हें अपने परिवारका हिस्सा मानते हैं। गायकी पूजा करना और उनकी देखभाल करना ही उनका एकमात्र काम है।

मुंदारी जनजातिके लोग गोमूत्रसे नहाते हैं, क्योंकि उन लोगोंका मानना है कि ऐसा करनेसे उनके शरीरमें कोई रोग नहीं होता। साथ ही त्वचा हल्के नारंगी रंगकी हो जाती है जो कि उनके लिये अच्छा है। यहाँ गायकी पूजा करते हैं। उनका मानना है कि गाय ही उनके जीवनको बचा सकती है। वे बैलोंसे खेती करते हैं। उन्होंने अपनी गायोंकी नस्लमें कोई बदलाव नहीं होने दिया है।

[साभार—नागरिक टाइम्स, लखनऊ]

संत-चरित—

भक्त श्रीगणेश योगीन्द्र

(पं० श्रीदामोदर प्रह्लादजी पाठक, शास्त्री)

वर्तमान गाणपत्य सम्प्रदायके अनुयायियोंके मूलपुरुष एवं गुरुतुल्य विप्रवर गणेश योगीन्द्र ही हैं। ये महात्मा प्रख्यात मुद्‌गलमुनिके अवतार माने जाते हैं।

इनके पवित्र वंशमें प्राय: सभी उद्भट विद्वान् और गाणपत्य थे। इनके पितामह विप्र सोमनाथ गुजरातमें सोरटी सोमनाथके आंबी-नामक गाँवमें रहते थे। सोमनाथ विद्वान्, धर्मात्मा एवं तेजस्वी ब्राह्मण थे। इनकी सहधर्मिणी उमादेवी भी पतिपरायणा एवं धर्मानुरागिणी थीं। इनके चिन्तामणि और मोरेश्वर नामक दो सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों पुत्र वेद-शास्त्रोंके विद्वान् थे।

एक दिन स्वप्नमें धर्मात्मा सोमनाथसे शृंगेरीमठकी अधिष्ठात्री देवी शारदाने कहा—'शृंगेरीमठके यति मरणासन्न हैं। उक्त पदका दायित्व सँभालनेके लिये तुम अपने ज्येष्ठ पुत्र चिन्तामणिको वहाँ भेज दो।'

सोमनाथ पत्नी और पुत्रोंसहित शृंगेरी पहुँचे। वहाँ पीठस्थ यति नृसिंहाश्रमाचार्यने भी ऐसा ही स्वप्न देखा था। उन्होंने ब्राह्मण सोमनाथात्मज चिन्तामणिको संन्यासकी दीक्षा देकर उन्हें उक्त पवित्र पीठपर नियुक्त कर दिया।

सोमनाथ अपनी सहधर्मिणी और पुत्र मोरेश्वरके साथ आम्बी लौट आये। मोरेश्वर सविधि गृहस्थ हुए, किंतु अधिक दिन व्यतीत होनेपर भी उनके कोई संतान नहीं हुई। पौत्र-मुख देखे बिना ही सोमनाथ और उनकी पत्नी उमादेवीका यथासमय शरीरान्त हो गया।

आचार्यपीठस्थ चिन्तामणि आचार्यने अद्वैतसिद्धान्तकी स्थापनामें सहयोग प्राप्त करनेके लिये विद्वान् मोरेश्वरको शृंगेरी बुलाया। मोरेश्वरने उनकी आज्ञाका पालन किया। उन्होंने विरुद्ध मतोंका खण्डनकर चिन्तामणि योगीन्द्राचार्यकी बड़ी सहायता की। तदनन्तर वे आम्बी लौट आये।

विद्वान् मोरेश्वर वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये चिन्तित थे। वे सपत्नीक महाराष्ट्रके जाग्रत् गणेश-पीठ मोरगाँव जाकर मयूरेश्वरकी उपासना करने लगे। एक मासतक निरन्तर उपासनाकर वे पुन: आम्बी आ गये। भगवान् मयूरेश्वरके अनुग्रहसे उनकी धर्मपत्नीने श्रावणशुक्ल ५ शकाब्द १४९९ में पुत्र-प्रसव किया। शृंगेरीपीठस्थ आचार्य चिन्तामणिके अनुज गणेशोपासक विद्वान् पं० मोरेश्वरका यही पुत्र श्रीगणेश योगीन्द्राचार्यके नामसे प्रख्यात हुआ।

श्रीगणेश परम ज्ञान-पिपासु थे। उपनयनके अनन्तर उन्होंने सर्वप्रथम अपने पिता और फिर विनायकशास्त्री-नामक गुरुके चरणोंमें बैठकर वेदादि शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। इसके अनन्तर उन्होंने प्रसिद्ध विद्वानोंके पास जाकर बड़े परिश्रमसे षट्शास्त्र, स्मृति, इतिहास, पुराण, ज्यौतिष और योग आदि समस्त शास्त्रोंका सविधि अध्ययन कर लिया। घर लौटनेतक उनके हेरम्ब नामक एक अनुज भी हो गया था।

समस्त शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान् श्रीगणेश विद्यासे तृप्त नहीं थे। उन्होंने अपने पिताके चरणोंपर मस्तक रखकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विनीत वाणीमें निवेदन किया—'पिताजी! आपने स्वानन्द-गणेशकी कृपाका जो अलौकिक आनन्द प्राप्त किया, उस आनन्दकी प्राप्तिके लिये आप मुझपर दया कीजिये।'

गणेश-भक्त पिताने पुत्रकी पवित्र कामनासे प्रसन्न होकर पहले तो उससे आवश्यक शास्त्रोक्त तपश्चर्या करवायी, तदनन्तर उसे श्रीगणेश-मन्त्रकी दीक्षा दे दी।

श्रीगणेश-मन्त्र प्राप्त हो जानेपर गणेशने सविधि अनुष्ठान प्रारम्भ किया। उनकी श्रद्धा-भक्तिसे प्रसन्न होकर गजमुखने प्रकट होकर कहा—'वर माँगो।'

परम भक्त गणेशने अपने आराध्य गजवक्त्रसे याचना की—'मुझे आपके चरणोंकी सुदृढ़ भक्ति प्राप्त हो।' (मुद्‌गलमुनिने भी भगवान् गणेशके सम्मुख यही इच्छा व्यक्त की थी।)

परमप्रभु गजाननने कहा—'आर्यधरापर गणेश-मार्ग लुप्तप्राय है। तुम उक्त भक्ति-योगप्रधान मार्गकी स्थापना करो। तुम शृंगेरी जाकर अपने ज्येष्ठ पितृव्य चिन्तामणि योगीन्द्रसे संन्यासकी दीक्षा लेकर पुन: इस भूस्वानन्द-क्षेत्रमें मेरे समीप आकर अनवरतरूपमें लोकोद्धारका कार्य करते रहो।'

भगवान् मयूरेश्वरने अपना प्रसाद-मोदक भक्त गणेशके मस्तकपर रखा और अदृश्य हो गये। उक्त दुर्लभतम प्रसादके ग्रहण करते ही भक्त गणेशका सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त कान्तिमान् हो गया।

माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर गणेश शृंगेरी पहुँचे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पितृव्यको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने कहा—'मुझे भी सुरेन्द्रपाद योगीन्द्रसे यही आज्ञा प्राप्त हुई है।' उन्होंने गणेशको संन्यासकी दीक्षा दे दी और उनका नामकरण किया—'गणेश योगीन्द्र।'

श्रीगणेश योगीन्द्र मोरगाँव आकर मयूरेश्वरके पीछे एक अहातेमें रहते हुए श्रीगणेशोपासनाके साथ लोकोद्धारके शुभ कार्यमें जुट गये। किंतु उनके मनकी एक कामना उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी—'साक्षात् स्वानन्द गणेशने मुद्गलऋषिको जो शतोपनिषद्-ज्ञान प्रदान किया, वह उपनिषत्पुराण कहाँ मिलेगा?' एतदर्थ श्रीगणेश योगीन्द्र भारत-भ्रमण करने लगे। उक्त प्राचीन ग्रन्थके जहाँ प्राप्त होनेकी सूचना मिली, वहीं वे गये। इसके लिये उन्होंने काशीमें भी अधिक समयतक निवास किया; किंतु ग्रन्थ कहीं प्राप्त नहीं हुआ। विवशत: वे मोरगाँव जाकर अपने आराध्यदेव प्रभु मयूरेश्वरसे करुण-प्रार्थना करने लगे।

एक दिन श्रीगणेश योगीन्द्रके समीप एक ब्राह्मण देवताने आकर कहा—'आप कृपापूर्वक कुछ देरके लिये मेरी यह पोथी अपने पास रख लीजिये। मैं अभी स्नान करके लौटता हूँ।' ब्राह्मण देवता स्नान करके लौटे। उन्होंने सन्ध्या-वन्दनादिके पश्चात् उक्त ग्रन्थका पाठ करना प्रारम्भ किया। अत्यन्त तेजस्वी, पर सर्वथा सरल ब्राह्मणको देखते ही श्रीगणेश योगीन्द्रका मन उनकी ओर आकृष्ट हो गया। वे ब्राह्मणकी प्रत्येक क्रिया ध्यानपूर्वक देख रहे थे। ब्राह्मणने पाठ-समाप्तिके अनन्तर श्रीगणेश योगीन्द्रके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। श्रीगणेश योगीन्द्रने ब्राह्मणसे पूछा—'आप किस ग्रन्थका पाठ कर रहे थे?'

ब्राह्मणने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'स्वामिन्! यह 'मौद्गलपुराण'का प्रथम खण्ड है। इसका प्रतिदिन पाठ करनेका नियम होनेसे मैं प्रवासमें भी इसे अपने पास रखता हूँ।'

'मौद्गल'! नाम कानमें पड़ते ही गणेश योगीन्द्रकी विचित्र दशा हो गयी। उनके नेत्र भर आये। 'मैं इसी ग्रन्थ-रत्नके लिये सर्वत्र भटक आया।'—गद्गद कण्ठसे श्रीगणेश योगीन्द्रने कहा—'यह ग्रन्थरत्न आपके पास है, इस कारण आप निश्चय ही भाग्यवान् हैं।'

ब्राह्मणने सहज भावसे कहा—'इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? गाणपत्योंको 'मौद्गलपुराण'का नित्य-पाठ आवश्यक है। मेरे पास तो यह सम्पूर्ण 'मुद्गलपुराण' है।'

अत्यन्त व्याकुलतासे श्रीगणेश योगीन्द्रने कहा— 'मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके मनुष्य-वेषमें मेरे यहाँ साक्षात् भगवान् गणेश ही पधारे हैं। इस ग्रन्थके लिये मैं दीर्घकालसे आकुल हूँ। यदि आप कुछ समयके लिये मुझे इसे दे देनेकी कृपा करें तो मैं इसकी प्रतिलिपिकर शीघ्र ही इसे आपको लौटा दूँगा।'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'गणेश-भक्तोंका वचन कैसे टाला जा सकता है? मैं प्रत्येक चतुर्थीको इसका एक-एक खण्ड आपको देता जाऊँगा। इस प्रकार मुझे भगवद्दर्शनका लाभ प्राप्त होता रहेगा और आपकी लालसाकी पूर्ति भी हो जायगी।'

ब्राह्मण देवता 'मुद्गलपुराण'का उक्त प्रथम खण्ड श्रीगणेश योगीन्द्रको देकर चले गये। इसी प्रकार वे प्रत्येक चतुर्थीको एक खण्ड श्रीस्वामीजीको दे देते और श्रीस्वामीजी उसकी प्रतिलिपि करके ठीक दूसरी चतुर्थीको उन्हें लौटा देते। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण 'मुद्गलपुराण' लिख लिया।

उसी ब्राह्मणसे प्राप्त कारिकासहित 'मौद्गलादेश'का लेखन श्रीगणेश योगीन्द्रने चतुर्थीसे नवमीतक छ: दिनोंमें ही पूरा कर लिया। ब्राह्मण देवता तो आगामी चतुर्थीतक पधारेंगे, यह सोचकर श्रीगणेश योगीन्द्रने उसके शुद्धाशुद्धको देखनेका विचार किया; किंतु ठीक उसी समय ब्राह्मण देवताने आकर कहा—'मौद्गलादेश दीजिये।'

आश्चर्यचकित होकर श्रीगणेश योगीन्द्रने ब्राह्मणसे पूछा—'आप निर्धारित समयसे पूर्व ही कैसे पधारे? मैंने प्रतिलिपि पूरी कर ली, यह आपको कैसे विदित हुआ?'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—'इस क्षेत्रमें मेरा एक भाई रहता है। वह महागणेश है। मैं उसीसे मिलने आ गया।'

'आपका भाई? महागणेश? वे इसी क्षेत्रमें रहते हैं और आजतक मैं उन्हें नहीं जान सका? चलिये, मैं भी उनके दर्शन कर लूँ।' कहते हुए श्रीगणेश योगीन्द्र ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उनके साथ चल पड़े। ब्राह्मण देवता श्रीगणेश योगीन्द्रके साथ मयूरेश्वर-मन्दिरमें पहुँचे। प्रदक्षिणा पूरीकर दोनों श्रीभगवान्के विग्रहके समीप गये ही थे कि ब्राह्मण देवता अदृश्य हो गये।

श्रीगणेश योगीन्द्र उदास हो गये। वे सोचने लगे—

'कितनी करुणा है परमप्रभु गणेशमें! वे कृपापूर्वक स्वयं मेरे यहाँ पधारे और मैं उन्हें पहचान भी नहीं सका; किंतु मेरी कामना-पूर्तिके लिये उन्होंने स्वयं मुझे 'मौद्गलपुराण' एवं 'मौद्गलादेश' प्रदान करनेका अनुग्रह किया। यह सोचकर वे प्रसन्न भी हुए और आनन्दमग्न होकर उन्होंने उसी समय भगवान् मयूरेश्वरका गद्गद कण्ठसे स्तवन किया। वह 'विघ्नेशाष्टक स्तुति'के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीगणेश योगीन्द्रने 'मुद्गलपुराण' और 'कारिकासहित मुद्गलादेश'—इन दोनों ग्रन्थोंपर भाष्य लिखा। इनके अतिरिक्त उन्होंने सर्वसारनिर्णय टीका, गाणकप्रस्थानत्रयी भाष्य, गणेशपुराणान्तर्गत सहस्रनामका शुद्धिकरण और भाष्य, गणेशपुराण-टिप्पणी, पातंजलसूत्रभाष्यपर शान्ति-भाष्य, व्यासके ब्रह्मसूत्रोंपर सिद्धान्तलेश नामक निबन्ध-ग्रन्थ और गणेशगीतापर योगेश्वरी नामक (ओवीबद्ध) टीकाके द्वारा विशाल एवं समृद्ध वाङ्मय निर्माणकर श्रीगणेशोपासकोंका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

वे प्रचारक भी अद्भुत थे। श्रीगणेशजीके १०८ क्षेत्रोंमें घूम-घूमकर आपने सर्वत्र गणेश-भक्तियोगका प्रचार किया और इस शुभ कार्यमें उन्हें अकल्पित सफलता भी प्राप्त हुई। श्रीगणेशजीके अनन्य भक्त श्रीगणेश योगीन्द्रने गणेश-गुरुपीठका उद्धार भी किया।

श्रीगणेश योगीन्द्रके भाष्यसे सन्तुष्ट होकर महामुनि मुद्गलने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर आदेश दिया—'गणेश-मार्ग लुप्तप्राय हो गया है और शुद्ध शास्त्रीय उपासना कहीं नहीं रह गयी है। इस प्रचलित पाषण्डका नाशकर गणेश-पथ-प्रदर्शित करनेके लिये तुम्हारा जन्म मेरे वंशमें हुआ है। तुम ब्रह्मानन्द योगीन्द्रकी शरण ग्रहणकर पूर्वके धर्माचार्योंकी तरह अद्वैत मतकी स्थापनाके लिये कार्य करो।'

महामुनि मुद्गलके आज्ञानुसार श्रीगणेश योगीन्द्र ब्रह्मानन्द योगीन्द्रका शिष्यत्व स्वीकारकर भूस्वानन्द-पीठका कार्य करने लगे। इस भूतलपर श्रीगणेश योगीन्द्र २२७ वर्षतक जीवित रहे। इतनी दीर्घायु प्राप्तकर उन्होंने महान् कार्य भी किया। उन्होंने जीवनके प्रथम शतकमें गणेशाद्वैत सिद्धान्त एवं द्वितीय शतकमें मिश्रमार्ग (भक्तियोगप्रधान मार्ग)-की स्थापना की।

बौद्ध-धर्मके हीनयान और महायान—दो पन्थोंकी तरह श्रीगणेश योगीन्द्रने गणेश-तत्त्वके प्रचार और प्रसारके लिये दो मार्गोंका निर्देश किया। एक तो शुद्ध गणेशयोगमार्ग अर्थात् दीक्षाप्रधान वैदिक मार्ग। किंतु सर्वत्र मन्त्रसंकर होनेके कारण वैदिक-पथपर आरूढ़ होना कठिन प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने उक्त मार्गके कुछ भागमें मन्त्रोपदेश अर्थात् भक्तियोगप्रधान भागका मिश्रणकर दूसरे भक्तियोग-प्रधान मिश्रमार्गकी स्थापना की। इस प्रकार उनके द्वारा सर्वसाधारणके लिये गणेशतत्त्वका पथ प्रशस्त हो गया।

श्रीगणेश योगीन्द्रके कितने ही शिष्य थे, किंतु उनके यति शिष्योंमें ये पाँच प्रमुख थे—सिद्धेश्वर, सुब्रह्मण्य, ढुण्ढिराज, कृष्णेन्द्र और राघवेन्द्र। इनमें सिद्धेश्वर श्रीगणेश योगीन्द्रके देहावसानतक उनके पास ही थे। सुब्रह्मण्य दक्षिण भारतके विद्याधीशपुरमें गणेश महाक्षेत्रके योगीन्द्रमठमें गणेश-तत्त्वके प्रचार-प्रसारके लिये भेज दिये गये थे। ढुण्ढिराज काशी भेजे गये थे। कृष्णेन्द्रको श्रीगंगाजीके उत्तर-भागमें निर्मित मठ-शाखामें तथा राघवेन्द्रको इसी पवित्रतम कार्यके लिये हिमालय पर्वतके प्रदेशोंमें भेजा गया था।

श्रीगणेश-तत्त्वज्ञानके प्रमुख उद्गाता, गणेश-सम्प्रदायके प्रवर्तक, मुद्गलमुनिके अवतार श्रीगणेश योगीन्द्रकी गुरु-परम्परा भी महागाणपत्योंकी है। (१) श्रीगौडपादाचार्य योगीन्द्र—ये गणेशाथर्वशीर्ष, माण्डूक्य उपनिषद्-भाष्यकार, महावाक्यदर्शनकर्ता एवं गणेश-गीतासार ग्रन्थके लेखक थे। इनके शिष्य (२) श्रीमत् शंकराचार्य योगीन्द्रने प्रस्थान-त्रयीपर भाष्य प्रस्तुत किया। इनके शिष्य (३) श्रीगिरिजासुत योगीन्द्र थे। इन्होंने गणेशाद्वैतसिद्धान्तकी स्थापना एवं श्रीक्षेत्र मयूरेश्वरके महासिद्धपीठ नामक गणेश-गुरुस्थानादिके उद्धारके साथ अनेक उपयोगी ग्रन्थोंकी रचना की। इनके शिष्य (४) श्रीब्रह्मानन्द योगीन्द्र हुए और इन्हींके शिष्य (५) महान् गाणपत्य श्रीगणेश योगीन्द्र हुए।

स्वनामधन्य श्रीगणेश योगीन्द्रने शक सम्वत् १७२७ माघ कृष्ण १० (सन् १८०५ ई०)-के दिन समाधि ले ली। उनकी समाधि मोरगाँवमें करहा नदीके तटपर है। श्रीगणेश योगीन्द्रके मराठी-स्तवनकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

ॐ नमो गणेशपायांसी। जया नमनें सर्वांसी।
सकलसिद्धि सरसासीं। पावनी अनंत॥

'जिनके नमनसे समस्त सिद्धियाँ अनन्त कालतक प्राप्त होती हैं, उन गणेशके चरणोंमें मेरा प्रणाम है।'

प्रेरक कथा—

आदर्श बी०ए० बहू

(पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)

बात न पुरानी है, न सुनी हुई कहानी है। कानसे ज्यादा आँखें जानती हैं। कहानीके सभी पात्र वास्तविक हैं; अतएव नाम बदलकर ही कहना होगा।

एक रिटायर्ड जज हैं। कहा जाता है कि उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली थी। धार्मिक विचारोंके सद्-गृहस्थ हैं। दावतोंमें, पार्टियोंमें, मित्रोंके यहाँ खान-पानमें वे चाहे जितने स्वतन्त्र रहे हों, पर घरके अन्दर रसोई-घरकी रूढ़ियोंके पालनमें न असावधानी करते थे, न होने देते थे।

गृहिणी शिक्षिता हैं; सभा-सोसाइटियोंमें, दावतोंमें पतिके साथ खुलकर भाग लेती रही हैं; पर घरके अन्दर चूल्हेकी मर्यादाका वे पतिसे भी अधिक ध्यान रखती हैं। तुलसीको प्रत्येक दिन सबेरे स्नान कराके जल चढ़ाना और सन्ध्या समय उसे धूप-दीप देना और उसके चबूतरेके पास बैठकर कुछ देर श्रीरामचरितमानसका पाठ करना—यह उनका नियमित काम है, जो माता-पितासे विरासतकी तरह मिला है और कभी छूट नहीं सकता।

जज साहबके कोई पुत्र नहीं; एक कन्या है। जिसका नाम लक्ष्मी है। माता-पिताकी एक ही संतान होनेके कारण उसे उनका पूर्ण स्नेह प्राप्त था। लक्ष्मीको भगवान्ने सुन्दर रूप दिया है।

लक्ष्मीको खर्च-बर्चकी कमी नहीं थी। युनिवर्सिटीमें पढ़नेवाली साथिनोंमें वह सबसे अधिक कीमती और आकर्षक वेष-भूषामें रहा करती थी। वह स्वभावकी कोमल थी, सुशील थी, घमण्डी नहीं थी। घरमें आती तो माँके साथ मेमनेकी तरह पीछे-पीछे फिरा करती थी। माँकी इच्छासे वह तुलसीके चबूतरेके पास बैठकर तुलसीकी पूजामें भी भाग लेती और माँसे अधिक देरतक बैठकर मानसका पाठ भी किया करती थी। भारतीय संस्कृति और युनिवर्सिटीकी रहन-सहनका यह अद्भुत मिश्रण था।

जज साहबकी इच्छा थी कि लक्ष्मी बी०ए० पास कर ले, तब उसका विवाह करें। वे कई वर्षोंसे सुयोग्य वरकी खोजमें दौड़-धूप कर रहे थे। बी०ए० कन्याके लिये एम०ए० वर तो होना ही चाहिये; पर कहीं एम०ए० वर मिलता तो कुरूप मिलता; कहीं भयंकर खर्चीली जिन्दगीवाला पूरा साहब मिलता; कहीं दहेज इतना माँगा जाता कि रिश्वत न लेनेवाला जज दे नहीं सकता। कन्याके पिताको जज, डिप्टी कमिश्नर, डिप्टी कलक्टर आदि शब्द कितने महँगे पड़ते हैं; यह वे ही जान सकते हैं।

लक्ष्मीने बी०ए० पास कर लिया और अच्छी श्रेणीमें पास किया। अब वह पिताके पास परायी थातीकी तरह हो गयी। अब उसे किसी नये घरमें बसा देना अनिवार्य हो गया। जज साहब वर खोजते-खोजते थक चुके थे और निराश होकर पूजा-पाठमें अधिक समय लगाने लगे थे।

मनुष्यके जीवनमें कभी-कभी विचित्र घटनाएँ घट जाती हैं। क्या-से-क्या हो जाता है; कुछ पता नहीं चलता। एक दिन शहरकी एक बड़ी सड़कपर जज साहब अपनी कारमें बैठे थे। इंजनमें कुछ खराबी आ गयी थी, इससे वह चलता नहीं था। ड्राइवर बार-बार नीचे उतरता, इंजनके पुरजे खोलता-कसता; तार मिलाता, पर कामयाब न होता। उसने कई साधारण श्रेणीके राह-चलतोंको कहा कि वे कारको ढकेल दें, पर किसीने नहीं सुना। सूट-बूटवालोंको कहनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। एक नवयुवक, जो बगलसे ही जा रहा था और जिसे बुलानेकी ड्राइवरको हिम्मत भी न होती, अपने-आप कारकी तरफ मुड़ पड़ा और उसने ड्राइवरको कहा—'मैं ढकेलता हूँ, तुम स्टेयरिंग पकड़ो।'

ड्राइवरने कहा—'गाड़ी भारी है, एकके मानकी नहीं।'

युवकने मुसकराकर कहा—देखो तो सही।

ड्राइवर अपनी सीटपर बैठ गया। युवकने अकेले ही गाड़ीको दूरतक ढकेल दिया। इंजन चलने लगा।

जज साहबने युवकको बुलाया, धन्यवाद दिया। युवकका चेहरा तप्त कांचनकी तरह चमक रहा था। चेहरेकी बनावट भी सुन्दर थी। जवानी अंग-अंगसे छलकी पड़ती थी। फिर भी पोशाक बहुत सादी थी—धोती, कुरता और चप्पल। चप्पल बहुत घिसी-घिसाई थी और धोती तथा कुरतेके कपड़े भी सस्ते किस्मके थे। फिर भी आँखोंकी ज्योति और चेहरेपर गम्भीर भावोंकी झलक देखकर जज साहब उससे कुछ बात किये बिना रह नहीं सके।

इंजन चल रहा था, ड्राइवर आज्ञाकी प्रतीक्षामें था।

जज साहबने युवकसे कहा—शायद आप भी इसी तरफ चल रहे हैं; आइये, बैठ लीजिये। रास्तेमें जहाँ चाहियेगा, उतर जाइयेगा।

युवक जज साहबकी बगलमें आकर बैठ गया। जज साहबने पूछ-ताछ की तो युवकने बताया कि वह युनिवर्सिटीका छात्र है। अमुक जिलेके एक गरीब कुटुम्बका लड़का है। मैट्रिकसे लेकर एम०ए० तक बराबर प्रथम आते रहनेसे उसे छात्रवृत्ति मिलती रही; उससे और कुछ अँगरेजी कहानियोंके अनुवादसे पारिश्रमिक पाकर उसने एम०ए० प्रथम श्रेणीमें पास कर लिया और अब उसे विदेशमें जाकर शिक्षा ग्रहण करनेके लिये सरकारी छात्रवृत्ति मिलेगी। वह दो महीनेके अन्दर विदेश चला जायगा।

जज साहबका हाल तो—***'पैरत थके थाह जनु पाई'***जैसा हो गया। बात करते-करते वे अपनी कोठीपर आ गये। स्वयं उतरे, युवकको भी उतारा; और कहा—आपने रास्तेमें मेरी बड़ी सहायता की। अब कुछ जल-पान करके तब जाने पाइयेगा।

युवकको बैठकमें बैठाकर जज साहब अन्दर गये और लक्ष्मी एवं उसकी माताको भी साथ लेकर आये और उनसे युवकका परिचय कराया। इसके बाद नौकर जल-पानका सामान लेकर आया और युवकको जज साहबने बड़े प्रेमपूर्वक जल-पान कराया। इसके बाद युवकको जज साहब अक्सर बुलाया करते थे और वह आता-जाता रहा।

गरीब युवकके जीवनमें यह पहला ही अवसर था, जब किसी रईसने इतने आदरसे उसे बैठाया और खिलाया-पिलाया हो।

अन्तमें यह हुआ कि जज साहबने लक्ष्मीका विवाह युवकसे कर दिया।

युवकके विदेश जानेके दिन निकट चले आ रहे थे। जज साहबने सोचा कि लक्ष्मी कुछ दिन अपने पतिके साथ उसके गाँव हो आये तो अच्छा; ताकि दोनोंमें प्रेमका बन्धन और दृढ़ हो जाय और युवक विदेशमें किसी अन्य स्त्रीपर आसक्त न हो।

जज साहबका प्रस्ताव सुनकर युवकने कहा—मैं गाँव जाकर घरको ठीक-ठाक करा आऊँ, तब बहूको ले जाऊँ।

युवक गाँव आया। गाँव दूसरे जिलेमें शहरसे बहुत दूर था और पूरा देहात था। उसका घर भी एक टूटा-फूटा खँडहर ही था। उसपर एक सड़ा-गला छप्पर रखा था। उसके नीचे उसका बुड्ढा बाप दिन-भर बैठे-बैठे हुक्का पिया करता था।

युवकके चाचा धनी थे और उनकी बखरी बहुत बड़ी और बेटों-पोतों एवं बहुओंसे भरी हुई थी। युवकने चाचासे प्रार्थना की कि उसे वह अपने ही घरका बतायें और पन्द्रह दिनोंके लिये उसकी बहूको अपने घरमें रहने दें। चाचाने स्वीकार कर लिया।

घरके बाहरी बरामदेमें एक कोठरी थी। युवकने उसीको साफ कराके उसमें जरूरी सामान रखवा दिये; एक कुरसी और मेज भी रखवा दिये। बहू चाचाके घरमें खाना खा लिया करेगी और उसी कोठरीमें रहेगी। एक लड़केको नौकर रख लिया गया।

युवक वापस जाकर बहूको ले आया। पाँच-सात दिन बहूके साथ गाँवमें रहकर युवक अपनी विदेश-यात्राकी तैयारी करनेके लिये शहरको वापस गया और बहू चाचाके घरमें अकेली रहने लगी। दोनों वक्त घरके अन्दर जाकर खाना खा आती और नौकरकी सहायतासे दोनों वक्त कोठरीके अन्दर चाय बनाकर पी लिया करती। चायका सामान वह साथ लायी थी।

दो ही चार दिनोंमें बहूका परिचय गाँवकी प्राय: सब छोटी-बड़ी स्त्रियों और बच्चोंसे हो गया। बहूका स्वभाव मिलनसार था। माता-पिताकी धार्मिक शिक्षाओंसे और श्रीरामचरितमानसके नियमित पाठसे उसके हृदयमें कोमलता और सहिष्णुता आ गयी थी। सबसे वह हँसकर प्रेमपूर्वक मिलती, बच्चोंको प्यार करती, बिस्कुट देती और सबको आदरसे बैठाती। रेशमी साड़ीके अन्दर लुभावने गुण देखकर मैली-कुचैली और फटी धोतियोंवाली ग्रामीण स्त्रियोंकी झिझक जाती रही और वे खुलकर बातें करने लगीं।

बहूको सीना-पिरोना अच्छा आता था, हारमोनियम बजाना और गाना भी आता था। कण्ठ सुरीला था, नम्रता

और विनयका प्रदर्शन करना वह जानती थी, उसका तो दरबार लगने लगा। कोठरीमें दिनभर चहल-पहल रहती। गाँवके नरकमें मानो स्वर्ग उतर आया था।

गाँवकी स्त्रियोंका मुख्य विषय प्राय: परनिन्दा हुआ करता है। कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी होती हैं कि ताने मारना, व्यंग्य बोलना, झगड़े लगाना उनका पेशा-सा हो जाता है और वे घरोंमें चक्कर लगाया ही करती हैं। एक दिन ऐसी ही एक स्त्री लक्ष्मीके पास आयी और उसने बिना संकोचके कहा—तुम्हारा बाप अन्धा था क्या, जो उसने बिना घर देखे विवाह कर दिया?

लक्ष्मीने चकित होकर पूछा—क्या यह मेरा घर नहीं है?

स्त्री उसका हाथ पकड़कर बरामदेमें ले गयी और उँगलीके इशारेसे युवकके खँडहरकी ओर दिखाकर कहा—'वह देखो, तुम्हारा घर है और वह तुम्हारे ससुरजी हैं, जो छप्परके नीचे बैठकर हुक्का पी रहे हैं। यह घर तो तुम्हारे पतिके चाचाका है, जो अलग रहते हैं।'

लक्ष्मीने उस स्त्रीको विदा किया और कोठरीमें आकर उसने गृहस्थीके जरूरी सामान—बरतन, आटा, दाल, चावल, मिर्च-मसालेकी एक सूची बनायी और नौकरको बुलाकर अपना सामान बँधवाकर वह उसे उसी खँडहरमें भेजवाने लगी।

चाचा सुन पाये। वे दौड़े आये। आँसू भरकर कहने लगे—बहू! यह क्या कर रही हो? मेरी बड़ी बदनामी होगी।

घरकी स्त्रियाँ भी बाहर निकल आयीं। वे भी समझाने लगीं। लक्ष्मीने सबको एक उत्तर दिया—दोनों घर अपने ही हैं। मैं इसमें भी रहूँगी और उसमें भी रहूँगी। फिर उसने चाचाके हाथमें कुछ रुपये और सामानकी सूची देकर कहा—यह सामान बाजारसे अभी मँगा दीजिये।

चाचा लाचार होकर बहुत उदास मनसे बाजारकी ओर गये, जो एक मील दूर था। बहू खँडहरमें आयी। आते ही उसने आँचलका छोर पकड़कर तीन बार ससुरका पैर छुआ। फिर खँडहरमें गयी। एक कोठरी और उसके सामने छोटा-सा ओसारा, घरकी सीमा इतनी ही थी। नौकरने सामान लाकर बाहर रख दिया। बहूने उससे गोबर मँगाया; एक बाल्टी पानी मँगाया। कोठरी और ओसारेको झाड़ू लगाकर साफ किया। फिर रेशमी साड़ीकी कछाँड़ मारकर वह घर लीपने बैठ गयी।

यह खबर बात-की-बातमें गाँवभरमें और उसके आसपासके गाँवोंमें भी पहुँच गयी। झुण्ड-के-झुण्ड स्त्री-पुरुष देखने आये। भीड़ लग गयी। कई स्त्रियाँ लीपनेके लिये आगे बढ़ीं; पर बहूने किसीको हाथ लगाने नहीं दिया। वृद्धा स्त्रियाँ आँसू पोंछने लगीं। ऐसी बहू तो उन्होंने कभी देखी ही नहीं थी। पुरुष लोग उसे देवीका अवतार मानकर श्रद्धासे देखने लगे।

इतनेमें बाजारसे बरतन आ गये। बहूने पानी मँगवाकर कोठरीमें स्नान किया। फिर वह रसोई बनाने बैठ गयी। शीघ्र ही भोजन तैयार करके उसने ससुरजीसे कहा कि वे स्नान कर लें।

ससुरजी आँखोंमें आँसूभरे मोह-मुग्ध बैठे थे। किसीसे कुछ बोलते न थे। बहूकी प्रार्थना सुनकर उठे, कुएँपर जाकर नहाया और आकर भोजन किया। बरतन सब नये थे। खँडहरमें एक ही झिलँगा खाट थी। बहूने उसपर दरी बिछा दी। ससुरको उसपर बैठाकर, चिलम चढ़ाकर हुक्का उनके हाथमें थमा दिया। फिर उसने स्वयं भोजन किया।

बहूने चाचासे कहा—दो नयी खाटें और एक चौकी आज ही चाहिये। बाधके लिये उसने चाचाको पैसे भी दे दिये। चाचा तो बाध खरीदने बाजार चले गये।

लोहार और बढ़ई वहीं मौजूद थे। सभी तो आनन्द-विभोर हो रहे थे। हर-एकके मनमें यही लालसा जाग उठी थी कि वह बहूकी कोई सेवा करे। लोहारने कहा—मैं पाटीके लिये अभी बाँस काटकर लाता हूँ और पाये गढ़कर खाटें बना देता हूँ।

बढ़ईने कहा—मैं चौकी बना दूँगा।

बाध भी आ गया। खाट बिननेवाला अपनी सेवा प्रस्तुत करनेके लिये मुँह देख रहा था। उसने दो खाटें बिन दीं। ससुरकी झिलँगा खाट भी बहूने आये-गयेके लिये बिनवाकर अलग रख ली। बढ़ईने चौकी बना दी। शामतक यह सब कुछ हो गया।

रातमें बहूने अपने माता-पिताको एक पत्र लिखा,

जिसमें दिनभरमें जो कुछ हुआ, सब एक-एक करके लिखा, पर पिताको यह नहीं लिखा कि तुमने भूल की और मुझे कहाँ-से-कहाँ लाकर डाल दिया। बल्कि बड़े उल्लासके साथ यह लिखा कि मुझे आपकी और माताजीकी सम्पूर्ण शिक्षाके उपयोग करनेका मौका मिल गया है।

बहूके झोंपड़ेपर तो मेला लगने लगा। सब उसको देवी करके मानने लगे थे। बराबर उम्रकी बहुएँ दूसरे गाँवोंसे आतीं तो आँचलके छोरको हाथोंमें लेकर उसका पैर छूनेको झुकतीं। बहू लज्जाके मारे अपने पैर साड़ीमें छिपा लेती। उनको पास बैठाती, सबसे परिचय करती और अपने काढ़े हुए बेल-बूटे दिखाती।

गाँवोंके विवाहित और अविवाहित युवक भी बहूको देखने आते। बहू तो परदा करती नहीं थी, पर युवकोंकी दृष्टिमें कामुकता नहीं थी। बल्कि जलकी रेखाएँ होती थीं। ऐसा कठोर तप तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं था।

रातमें बहूके झोंपड़ेके सामने गाँवकी वृद्धा स्त्रियाँ जमा हो जातीं। देवकन्या-जैसी बहू बीचमें आकर बैठ जाती। 'आरी-आरी कुस-काँसि, बीचमें सोनेकी रासि।' बहू वृद्धाओंको आँचलसे चरण छूकर प्रणाम करती; मीठी-मीठी हँसी-ठठोली भी करती। वृद्धाएँ बहूके स्वभावपर मुग्ध होकर सोहर गाने लगतीं। लोग हँसते तो वे कहतीं—बहूके बेटा होगा, भगवान् औतार लेंगे, हम अभीसे सोहर गाती हैं। बहू बेचारी सुनकर लज्जाके मारे जमीनमें गड़-सी जाती थी।

चौथे रोज जज साहबकी भेजी हुई एक लारी आयी, जिसमें सीमेन्टके बोरे, दरवाजों और खिड़कियोंके चौकठे और पल्ले, पलँग, मेज-कुर्सियाँ और जरूरी लोहा-लक्कड़ भरे थे और एक गुमाश्ता और दो राजगीर साथ थे।

गुमाश्ता जज साहबका एक लिफाफा भी लाया था; जिसमें एक कागज था और उसपर एक ही पंक्ति लिखी थी—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।

नीचे पिता और माता दोनोंके हस्ताक्षर थे। लक्ष्मी उस कागजको छातीसे चिपकाकर देरतक रोती रही।

जज साहबने गुमाश्तेको सब काम समझा दिया था। मकानका एक नक्शा भी उसे दिया था। गुमाश्तेने गाँवके पास ही एक खुली जगह पसन्द की। जमींदार उस जगहको बहूके नामपर मुफ्त ही देना चाहता था, पर गुमाश्तेने कहा कि जज साहबकी आज्ञा है कि कोई चीज मुफ्त न ली जाय। अतएव जमींदारने मामूली-सा दाम लेकर जज साहबके वचनकी रक्षा की।

पड़ोसके एक दूसरे गाँवके एक जमींदारने पक्का मकान बनवानेके लिये ईंटोंका पजावा लगवा रखा था। ईंटोंकी जरूरत सुनकर वह स्वयं आया और बहूके नामपर ईंटें मुफ्त ले लिये जानेका आग्रह करने लगा, पर गुमाश्तेने स्वीकार नहीं किया। अन्तमें पजावेमें जो लागत लगी थी, उतना रुपया देकर ईंटें ले ली गयीं।

मजदूर बिना मजदूरी लिये काम करना चाहते थे, पर बहूने रोक दिया और कहा कि सबको मजदूरी लेनी होगी।

दो राजगीर और भी रख लिये गये। पास-पड़ोसके गाड़ीवाले अपनी गाड़ियाँ लेकर दौड़ पड़े। पजावेकी कुल ईंटें ढोकर आ गयीं। मजदूरोंकी कमी थी ही नहीं। एक लम्बे-चौड़े अहातेके बीचमें एक छोटा-सा सीमेंटके पलस्तरका पक्का मकान, जिसमें दो कमरे नीचे और दो ऊपर तथा रसोई-घर, स्नानागार और शौचालय थे, दो-तीन हफ्तोंके बीचमें बनकर तैयार हो गया। अहातेमें फूलों और फलोंके पेड़-पौधे भी लगा दिये गये। एक पक्की कुइयाँ भी तैयार करा दी गयी।

युवकको अभीतक किसी बातका पता नहीं था। लक्ष्मीने भी कुछ लिखना उचित नहीं समझा; क्योंकि भेद खुल जानेसे पतिको लज्जा आती और जज साहबने भी लक्ष्मीको दूसरे पत्रमें लिख भेजा था कि वहाँका कोई समाचार वह अपने पतिको न लिखे।

गुमाश्तेका पत्र पाकर जज साहबने गृह-प्रवेशकी साइत पूछी और गुमाश्तेको लिखा कि साइतके दिन मैं, लक्ष्मीकी माँ और उसके पति भी आ जायँगे। एक हजार व्यक्तियोंको भोजन करानेकी पूरी तैयारी कर रखो।

लक्ष्मीने ससुरके लिये नेवारका एक सुन्दर-सा

पलँग, उसपर बिछानेकी दरी, गद्दा और चादर, तकिये और मसहरी गाँवहीमें मँगा लिया था। चाँदीका एक फर्शी हुक्का, चाँदीकी चिलम, चाँदीका पीकदान साथ लेते आनेके लिये उसने पिताको पत्र लिखा था। सब चीजें आ गयी थीं।

ठीक समयपर बड़ी धूम-धामसे गृह-प्रवेश हुआ। सबसे पहले युवकके पिता सुन्दर वस्त्र पहने हुए मकानके अन्दर गये। बढ़िया चादर बिछी हुई नेवारकी पलँगपर बैठाये गये, पास ही लक्ष्मीने स्वयं चिलम चढ़ाकर फर्शी हुक्का रख दिया। लक्ष्मीने ससुरके लिये एक सुन्दर-सा देहाती जूता भी बनवाया था; वही पहनकर ससुरने गृहमें प्रवेश किया था, वह पलँगके नीचे बड़ी शोभा दे रहा था। पलँगके नीचे चाँदीका पीकदान भी रखा था। ससुरको पलँगपर बैठाकर और हुक्केकी सुनहली निगाली उनके मुँहमें देकर बहूने आँचलका छोर पकड़कर तीन बार उनके चरण छुए। ससुरके मुँहसे तो बात ही नहीं निकलती थी। उनका तो गला फूल-फूलकर रह जाता था। हाँ, उनकी आँखें दिनभर अश्रुधारा गिराती रहीं।

प्रेम छिपाये ना छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नयन देत हैं रोय॥

गृह-प्रवेश कराके लक्ष्मीके माता-पिता एक कमरेमें जा बैठे थे। ससुरको पलँगपर बैठाकर और पतिको उनके पास छोड़कर बहू अपने माता-पिताके कमरेमें गयी। पहले वह पिताकी गोदमें जा पड़ी। पिता उसे देरतक चिपटाये रहे और आँसू गिराते रहे। फिर वह माताके गलेसे लिपट गयी। दोनों बाहें गलेमें लपेटकर वह मूर्छित-सी हो गयी। माँ-बेटी देरतक रोती रहीं।

माता-पितासे मिलकर बहू निमन्त्रितोंके लिये भोजनकी व्यवस्थामें लगी। उसने छोटी-से-छोटी कमीको भी खोज निकाला और उसे पूरा कराया। गृह-प्रवेशके दिन बड़ी भीड़ थी। आसपासके गाँवोंकी स्त्रियाँ, जिनमें वृद्धा, युवती, बालिका सब उम्रोंकी थीं, बहूका दर्शन करने आयी थीं। गरीब और नीची जातिकी स्त्रियोंका एक झुण्ड अलग खड़ा था। उनके कपड़े गन्दे और फटे-पुराने थे। भले घरोंकी स्त्रियोंके बीचमें आने और बैठनेका उनको साहस नहीं होता था। बहू स्वयं उनके पास गयी और एक-एकका हाथ पकड़कर ले आयी और बिछी हुई दरीपर एक तरफ उन्हें बैठा दिया और उनके गन्दे कपड़ोंका विचार किये बिना उनके बीचमें बैठ गयी। सबका परिचय पूछा और स्वागत-सत्कारमें जो पान-इलायची अन्य स्त्रियोंको दिया गया, वही उनको भी दिया। चारों ओरसे बहूपर आशीर्वादोंकी वृष्टि होने लगी।

सन्ध्याको निमन्त्रितोंको भोजन कराया गया। लोग प्रत्येक कौरके साथ बहूको आशीर्वाद देते थे। जबतक वे भोजन करते रहे, बहूके ही गुणोंका बखान करते रहे, ऐसी शोभा बनी कि कुछ कहते नहीं बनता।

युवक तो यह सब दृश्य देखकर अवाक् हो गया था। पत्नीके गुणोंपर वह ऐसा मुग्ध हो गया था कि दोनों आमने-सामने होते तो उसके मुँहसे बात भी नहीं निकलती थी। दिनभर उसकी आँखें भरी रहीं।

दो दिन उसी मकानमें रहकर लक्ष्मीके ससुरके लिये वर्षभर खानेका सामान घरमें रखवाकर लक्ष्मीके नौकरको उन्हींके पास छोड़कर और युवककी एक चाचीको, जो बहुत गरीब और अकेली थी, लक्ष्मीके ससुरके लिये खाना बनानेके लिये नियुक्त करके जज साहब अपनी पुत्री, उसकी माता और युवकको साथ लेकर अपने घर लौट गये। जानेके दिन आसपासके दस-पाँच मीलोंके हजारों पुरुष-स्त्री बहूको विदा करने आये थे। वह दृश्य तो अद्भुत था। आज भी लोग आँखोंमें हर्षके आँसू भरकर बहूको याद करते हैं।

वह पक्का मकान, जो सड़कसे थोड़ी दूरपर है, आज भी बहूके कीर्तिस्तम्भकी तरह खड़ा है।

युवक विदेशसे सम्मानपूर्ण डिग्री लेकर वापस आया है और कहीं किसी बड़े पदपर है। बहू उसीके साथ है।

एक बी०ए० बहूकी इस प्रकारकी कथा शायद यह सबसे पहली है और समस्त बी०ए० बहुओंके लिये गर्वकी वस्तु है। हम ऐसी कथाएँ और सुनना चाहते हैं।

यह श्रीरामचरितमानसका चमत्कार है, जिसने चुपचाप लक्ष्मीके जीवनमें ऐसा प्रकाश-पुंज भर दिया।

मानव जीवनमें गुण-दोष

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

स्वभावत: कोई भी व्यक्ति अपनेको अपनी दृष्टिमें भला ही देखना चाहता है, पर भलाई करके तो हम भले होते नहीं—भले होते हैं अपने जीवनमेंसे जानी हुई बुराइयों (दोषों)-का त्याग करनेसे। अपने जीवनमेंसे जानी हुई बुराइयोंको निकाल देनेपर भला बननेके लिये कुछ करना नहीं पड़ता, हम स्वत: भले बन जाते हैं। निर्दोषतामें हमारे व्यक्तित्वमें गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, परंतु उनका अभिमान भी नहीं रखना है।

प्रश्न उठता है कि जिसकी इतनी चर्चा की गयी है, वह बुराई (दोष या भूल कहें) वास्तवमें है क्या और जो जीवनसे जानी हुई बुराई निकालनेकी बात कही गयी है, वह कैसे सम्भव है। निम्नलिखित उद्धरणसे इस प्रश्नका सरल और स्पष्ट उत्तर मिल जाता है—

'अब विचार करना है कि गुण क्या है और दोष क्या है? दूसरोंकी ओरसे अपने प्रति होनेवाले दोषका ज्ञान स्वत: हो जाता है और दूसरोंसे हम वही आशा करते हैं, जो गुण है। कोई भी अपना अनादर, हानि-क्षति नहीं चाहता। सभी आदर, प्यार और रक्षा चाहते हैं। जिन प्रवृत्तियोंसे किसीकी क्षति हो, किसीका अनादर हो, किसीका अहित हो, वे सभी दोष हैं और जिन प्रवृत्तियोंसे दूसरोंका हित, लाभ एवं प्रसन्नता हो वे सभी गुण हैं।'

'गुणोंका उपयोग दूसरोंके प्रति होता है और उससे अपना विकास स्वत: हो जाता है। जिन प्रवृत्तियोंसे दूसरोंका अहित होता है, उन प्रवृत्तियोंसे अपना भी अकल्याण ही होता है। यह रहस्य जान लेनेपर दूसरोंके अहितकी कामना सदाके लिये मिट जाती है और सर्वहितकारी भावना स्वत: जाग्रत् होती है।'

'सर्व-हितकारी भावनाकी भूमिमें ही गुण विकास पाते हैं। जो किसीका बुरा नहीं चाहता, उसके सभी दोष स्वत: मिट जाते हैं। एक ही दोष स्थानभेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारका भासता है। सर्वांशमें किसी भी दोषके मिट जानेपर सभी दोष मिट जाते हैं और सर्वांशमें किसी भी गुणके अपना लेनेपर सभी गुण स्वत: आ जाते हैं। इस दृष्टिसे दोषोंकी निवृत्ति और सद्गुणोंकी अभिव्यक्ति युगपद् (automatic and simultaneous) है।'

'सर्वांशमें गुणोंकी अभिव्यक्ति होनेपर निरभिमानता आ जाती है; क्योंकि दोषोंकी उत्पत्ति नहीं होती और गुणोंसे अभिन्नता हो जाती है। यह नियम है कि जिससे अभिन्नता (identity) हो जाती है, उसका भास नहीं होता, अर्थात् उसमें अहम्बुद्धि नहीं होती अपितु वह जीवन हो जाता है।'

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुण तथा दोष क्या हैं और दोषोंकी निवृत्ति और गुणोंकी अभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव है। यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि हमें अपनेको अपनी दृष्टिमें तौलना है न कि इस आधारपर कि हमें लोग कैसा समझते हैं। 'हमें कोई बुरा न समझे, इससे हम भले हो नहीं जाते, भले तो बुराईके त्यागसे ही हो सकते हैं।'

ऐसा तर्क कोई प्रस्तुत कर सकता है कि हमें भले बननेकी क्या जरूरत है, हम जैसे हैं, वैसे ही ठीक हैं, परंतु ऐसा वही कह सकता है, जिसकी जीवन-बुद्धि विकारों और वासनाओंमें ही है और जीवनका कोई लक्ष्य ही नहीं है। जिसके जीवनमें लक्ष्य अथवा वास्तविक माँग परम शान्ति, परम स्वाधीनता और परम प्रियताकी है, वह ऐसा नहीं कहेगा; क्योंकि वह जानता है कि इनकी प्राप्ति निर्दोषताके बिना नहीं हो सकती।

अपनेको बुराईरहित बनाना अर्थात् हम किसीको बुरा न समझें, किसीका बुरा न चाहें और किसीके प्रति बुराई न करें, सहज हो जाता है, यदि यह ध्यान बना रहे कि भौतिकवादीकी दृष्टिसे जो जगत्‌की ही सत्ता मानते हैं, जगत्‌के नाते हम सब एक हैं, अध्यात्मवादीकी दृष्टिसे सभी परमात्माके अंश हैं और ईश्वरवादीकी दृष्टिसे सभी उसीके रूप हैं। इसलिये ***'कोई और नहीं कोई गैर नहीं।'***

साधनोपयोगी पत्र

(१)

निःस्वार्थ प्रेम और सच्चरित्रताकी महिमा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र तो मैं नहीं दे पाता, परंतु आपकी और आपके घरभरकी मधुर स्मृति कई बार होती है। संसारका मिलना बिछुड़नेके लिये ही हुआ करता है। जहाँ राग होता है, वहाँ विछोहमें दुःख और स्मृतिमें सुख-सा प्रतीत होता है। जहाँ द्वेष होता है, वहाँ विछोहमें सुख और स्मृतिमें दुःख होता है। राग-द्वेषसे परे निःस्वार्थ प्रेमकी एक स्थिति होती है, वहाँ माधुर्य-ही-माधुर्य है। स्वार्थ ही विष और त्याग ही अमृत है। जिस प्रेममें जितना स्वार्थत्याग होता है, उतना ही उसका स्वरूप उज्ज्वल होता है। प्रेमका वास्तविक स्वरूप तो त्यागपूर्ण है, उसमें तो केवल प्रेमास्पदका सुख-ही-सुख है। अपने सुखकी तो स्मृति ही नहीं है। अस्तु,

धन कमानेमें उन्नति हो यह तो व्यावहारिक दृष्टिसे वाञ्छनीय है ही, परंतु जीवनका उद्देश्य यही नहीं है। जीवनका असली उद्देश्य महान् चरित्रबलको प्राप्त करना है, जिससे भगवत्प्राप्तिका मार्ग सुगम होता है। धन, यश, पद, गौरव, मान, सन्तान सब कुछ हो, परंतु यदि मनुष्यमें सच्चरित्रता नहीं है तो वह वस्तुतः मनुष्यत्वहीन है। सच्चरित्रता ही मनुष्यत्व है।

धन कमानेकी इच्छा ऐसी प्रबल और मोहमयी न होनी चाहिये, जिससे न्याय और सत्यका पथ छोड़ना पड़े, दूसरोंका न्याय्य स्वत्व छीना जाय और गरीबोंकी रोटीपर हाथ जाय। जहाँ विलासिता अधिक होती है, खर्च बेशुमार होता है, भोगासक्ति बढ़ी होती है, झूठी प्रेस्टिज (Prestige)-का भार चढ़ा रहता है, वहाँ धनकी आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है और वैसी हालतमें न्यायान्यायका विचार नहीं रहता। गीतामें आसुरी सम्पत्तिके वर्णनमें भगवान्‌ने कहा है—'कामोपभोगपरायण पुरुष अन्यायसे अर्थोपार्जन करता है।' बुद्धिमान् पुरुषको इतनी बातोंपर ध्यान रखना चाहिये—विलासिता न बढ़े, फिजूलखर्ची न हो, जीवन यथासाध्य सादा हो, इज्जतका ढकोसला न रखा जाय, भोगियोंकी नकल न की जाय और परधनको विषके समान समझा जाय। इन बातोंको ध्यानमें रखकर सत्यकी रक्षा करते हुए ही धनोपार्जनकी चेष्टा करनी चाहिये और यदि धन प्राप्त हो तो उसे भगवान्‌की चीज मानकर अपने निर्वाहमात्रका उसमें अधिकार समझकर शेष धनसे भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये। कुटुम्बसेवा, गरीब-दुखी और विधवाओंकी सेवा आदिके रूपमें यह भगवत्सेवा की जा सकती है। सेवा करके अभिमान नहीं करना चाहिये। भगवान्‌की वस्तुसे भगवत्सेवा हो; हमें तो केवल निमित्तमात्र हैं, उन्हींकी चीज है, उन्हींके काममें लगती है, उन्हींके आज्ञानुसार लगती है। इसमें हमारे लिये अहंकारकी कौन-सी बात है? प्रभुके काममें न लगाकर स्वयं भोगते तो बेईमानी थी, पाप था। इन सब बातोंका खयाल रखना चाहिये। हो सके तो नित्य कुछ सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय और भगवद्भजन भी अवश्य करना चाहिये। इसकी आवश्यकता पीछे अवश्य मालूम होगी और उस समय पहलेका अभ्यास न होनेसे बड़ी कठिनाई होगी। शेष प्रभुकृपा।

(२)

श्रीजगन्नाथजीके प्रसादकी महिमा

आपका कृपापत्र मिला। श्रीजगन्नाथपुरी (पुरुषोत्तमक्षेत्र) काशीकी भाँति ही बहुत ही प्राचीन तीर्थ है। पुराणोंमें इसका बड़े विस्तारसे वर्णन है। स्कन्दपुराणके विष्णुखण्डमें पुरुषोत्तम-माहात्म्यके ५१ अध्याय हैं। परिवर्तन तो सभी क्षेत्रोंमें हुए हैं। यहाँ भी हुए हैं। आपने श्रीगजन्नाथजीके प्रसादके सम्बन्धमें पूछा सो इस सम्बन्धमें यह निवेदन है कि भगवान्‌के प्रसादमें साधारण अन्न-बुद्धि करना पाप माना गया है। प्रसाद प्रसाद ही है और बिना किसी संकोचके सबको उसका ग्रहण करना चाहिये। फिर, श्रीजगन्नाथजीके प्रसादके सम्बन्धमें तो यहाँतक वचन मिलते हैं कि—

पाकसंस्कारकर्तॄणां सम्पर्कोऽत्र न दुष्यति।
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥
वेश्यालयगतं तद्धि निर्माल्यं पतितादयः।
स्पृशन्त्यन्नं न दुष्टं तद्यथा विष्णुस्तथैव तत्॥

निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः।
स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते नापराधिनः॥
येषामत्र न दण्डश्चेद्ध्रुवा तेषां हि दुर्गतिः।
कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे॥
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतते यदि।
ब्राह्मणेनापि भोक्तव्यं सर्वपापापनोदनम्॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड)

'रसोई बनानेवालोंके सम्पर्कमें कोई दोष नहीं होता; क्योंकि श्रीलक्ष्मीजीकी सन्निधिके कारण वे सभी पवित्र हो जाते हैं। महाप्रसाद यदि वेश्यालयमें हो अथवा पतितादिके द्वारा स्पर्श किया हुआ हो, तब भी दूषित नहीं होता। वह विष्णुकी तरह पवित्र ही रहता है। जो पण्डिताभिमानी मूढ़ लोग अमृतरूप प्रसादकी निन्दा करते हैं, भगवान् उनके अपराधको न सहकर स्वयं उन्हें दण्ड देते हैं। यहाँ कदाचित् उनको दण्ड भोगते हुए न भी देखा जाय परंतु यह तो निश्चय ही है कि उनकी दुर्गति अवश्य होती है। मरनेके बाद वे महाघोर भयानक कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगते हैं। सारे पापोंका नाश करनेवाला प्रसाद यदि कुत्तेके मुखसे गिरा हुआ हो, उसको भी ब्राह्मणतक खा सकते हैं।'

इसी प्रकार पद्मपुराणमें आया है—

चाण्डालेनापि संस्पृष्टं ग्राह्यं तत्रान्नमग्रजैः।

× × × ×

पवित्रं भुवि सर्वत्र यथा गङ्गाजलं द्विज।
तथा पवित्रं सर्वत्र तदन्नं पापनाशनम्॥

'पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चाण्डालके द्वारा स्पर्श किया हुआ प्रसाद भी द्विजोंको ग्रहण करना चाहिये। हे द्विज! जैसे पृथ्वीमें गंगाजल सर्वत्र ही पवित्र है, वैसे ही यह प्रसाद भी सर्वत्र पवित्र और पाप-नाश करनेवाला है।'

प्रसिद्ध भक्त श्रीरघुनाथ गोस्वामी तो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें नालेमें बहकर आता हुआ प्रसाद बटोरकर उसे खाया करते थे। वह प्रसाद इतना पवित्र माना जाता था कि स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभुने एक दिन उनके हाथसे छीनकर उसको खा लिया था।

असल बात तो यह है कि श्रीभगवान्का प्रसाद भक्तोंके लिये साधारण अन्न नहीं है, वह तो परम दुर्लभ, सर्वपापनाशक महाप्रसाद है। प्रसादका स्वाद, उसकी बाहरी पवित्रता, उसका मीठा या कडुवापन नहीं देखा जाता। उसमें देखनेकी बात केवल एक ही है कि वह भगवान्का प्रसाद है। जिसको हमारे प्रभुने मुँहमें रख लिया, वही हमारे लिये परम पवित्र, परम मधुर और परम अमृत है। अतएव भक्तोंको बिना किसी विचारके भक्ति-श्रद्धापूर्वक तथा सत्कारके साथ प्रसादको ग्रहण करना चाहिये।

इसका यह अर्थ नहीं कि साधारण खान-पानमें पवित्रताका ख्याल छोड़ दिया जाय। वहाँ तो शास्त्रोक्त सभी प्रकारकी पवित्रताका खयाल पहले करना चाहिये। भगवत्प्रसाद साधारण अन्नकी श्रेणीसे परे है। शेष प्रभुकृपा

(३)

गम्भीरता या प्रसन्नता

पत्र मिला, धन्यवाद! निवेदन यह है कि एक ऐसी भी आध्यात्मिक स्थिति होती है और वह अच्छी होती है, जिसमें अन्तरमें उदासी न होनेपर भी चेहरेपर उदासी-सी मालूम होती है। यह वैराग्यकी एक अवस्था है, परंतु चेहरेकी उदासी और गम्भीरता ही आध्यात्मिक उन्नति या स्थितिकी पहचान नहीं है। गम्भीरता होनी चाहिये भीतर, इतनी कि जो किसी भी प्रकारसे किसी भी बाह्य परिस्थितिमें चित्तको क्षुब्ध न होने दे। बाहर तो सदा प्रसन्नता और हँसी ही होनी चाहिये। समुद्रका अन्तस्तल कितना गम्भीर होता है, उसमें कभी बाढ़ आती ही नहीं, परंतु उसके वक्ष:स्थलपर असंख्य तरंगें नित्य-निरन्तर नाचती रहती हैं—अठखेलियाँ करती रहती हैं। इसी प्रकार हृदय विशुद्ध, विकाररहित, स्थिर, गम्भीर और भगवत्संयोगयुक्त होना चाहिये और बाहर उनकी विविध लीलाओंको देख-देखकर पल-पलमें परमानन्दमयी हँसीकी लहरें लहराती रहनी चाहिये। मुर्दे-सा मुर्झाया हुआ मुँह किस कामका? जिसे देखते ही देखनेवालोंका भी हृदय हँस उठे, मुखकमल खिल उठे, मुखमुद्रा तो ऐसी ही होनी चाहिये।

इसका यह अर्थ भी नहीं कि विनोदके नामपर मर्यादारहित अनर्गल, असत्य प्रलाप किया जाय। उसका तो त्याग ही इष्ट है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ७।५९ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ५।३४ बजेतक	सोम	अश्विनी दिनमें ११।१ बजेतक	१७ अक्टूबर	**मूल** दिनमें ११।१ बजेतक, **तुला** संक्रान्ति रात्रिमें ८।२६ बजे।
तृतीया रात्रिमें ३।९ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ९।२१ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** सायं ४।२२ बजेसे रात्रिमें ३।९ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें २।५६ बजेसे।
चतुर्थी ,, १२।४८ बजेतक	बुध	कृत्तिका प्रातः ७।४१ बजेतक	१९ ,,	**संकष्टी (करवा) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।२८ बजे।
पंचमी ,, १०।३७ बजेतक	गुरु	मृगशिरा रात्रिशेष ४।४१ बजेतक	२० ,,	**मिथुनराशि** सायं ५।२४ बजेसे।
षष्ठी ,, ८।३८ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा रात्रिमें ३।३० बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।३८ बजेसे।
सप्तमी ,, ७।० बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, २।४० बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।५० बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ८।५३ बजेसे, **अहोईव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ११।२१ बजे।
अष्टमी सायं ५।४२ बजेतक	रवि	पुष्य ,, २।१० बजेतक	२३ ,,	**मूल** रात्रिमें २।१० बजेसे, **श्रीराधाष्टमी, सायन वृश्चिकराशि**का सूर्य रात्रिमें ७।५ बजे।
नवमी ,, ४।४९ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, २।७ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४।३७ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें २।७ बजेसे, **स्वाती नक्षत्र** का सूर्य दिनमें १२।५६ बजे।
दशमी ,, ४।२५ बजेतक	मंगल	मघा ,, २।३१ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** सायं ४।२५ बजेतक, **मूल** रात्रिमें २।३१ बजेतक।
एकादशी ,, ४।३२ बजेतक	बुध	पू० फा० ,, ३।२८ बजेतक	२६ ,,	**रम्भाएकादशीव्रत (सबका), गोवत्सद्वादशीव्रत।**
द्वादशी ,, ५।१२ बजेतक	गुरु	उ०फा० रात्रिशेष ४।५५ बजेतक	२७ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ९।५१ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी रात्रिमें ६।१७ बजेतक	शुक्र	हस्त अहोरात्र	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।१७ बजेसे, **धनतेरस, धन्वन्तरि-जयन्ती, नरकचतुर्दशी।**
चतुर्दशी ,, ७।५२ बजेतक	शनि	हस्त प्रातः ६।४९ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।५ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ७।५६ बजेसे, **श्रीहनुमज्जयन्ती।**
अमावस्या ,, ९।४५ बजेतक	रवि	चित्रा दिनमें ९।४ बजेतक	३० ,,	**अमावस्या, दीपावली।**

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।५० बजेतक	सोम	स्वाती दिनमें ११।३३ बजेतक	३१ अक्टूबर	काशीसे अन्यत्र **गोवर्धनपूजा।**
द्वितीया ,, १।५८ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, २।१२ बजेतक	१ नवम्बर	**वृश्चिकराशि** दिनमें ७।३२ बजेसे, **यमद्वितीया, भइयादूज।**
तृतीया ,, ३।५७ बजेतक	बुध	अनुराधा सायं ४।४५ बजेतक	२ ,,	**मूल** सायं ४।४५ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिशेष ५।३८ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिमें ७।४ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** सायं ४।४८ बजेसे रात्रिशेष ५।३८ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ७।४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी अहोरात्र	शुक्र	मूल ,, ९।४ बजेतक	४ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।४ बजेतक।
पंचमी प्रातः ६।५५ बजेतक	शनि	पू० षा० ,, १०।३६ बजेतक	५ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ४।४२ बजेसे।
षष्ठी ,, ७।४७ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, ११।४१ बजेतक	६ ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत, विशाखानक्षत्रका** सूर्य रात्रिमें ८।४ बजे।
सप्तमी दिनमें ८।६ बजेतक	सोम	श्रवण ,, १२।१५ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।६ बजेसे रात्रिमें ७।५९ बजेतक।
अष्टमी ,, ७।५२ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, १२।१९ बजेतक	८ ,,	**कुंभराशि** दिनमें १२।१७ बजेसे, **गोपाष्टमी, अक्षयनवमी, पंचकारम्भ** दिनमें १२।१७ बजे।
नवमी प्रातः ७।११ बजेतक दशमी रात्रिशेष ६।२ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ११।५५ बजेतक	९ ,,	**दुर्लभ सन्धिकरयोग** प्रातः ७।११ से रात्रिमें ११।१५ बजेतक।
एकादशी रात्रिमें ४।३१ बजेतक	गुरु	पू० भा० ,, ११।११ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** सायं ५।१७ बजेसे रात्रिमें ४।३१ बजेतक, **मीनराशि** सायं ५।२२ बजेसे, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त)।
द्वादशी ,, २।३९ बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, १०।४ बजेतक	११ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव), तुलसीविवाह, मूल** रात्रिमें १०।४ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १२।३३ बजेतक	शनि	रेवती ,, ८।४२ बजेतक	१२ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ८।४२ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत, पंचक समाप्त** रात्रिमें ८।४२ बजे।
चतुर्दशी ,, १०।१७ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ७।९ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।१७ बजेसे, **श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, मूल** रात्रिमें ७।९ बजेतक।
पूर्णिमा ,, ७।५५ बजेतक	सोम	भरणी सायं ५।३० बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।६ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ११।५ बजेसे, **कार्तिकी पूर्णिमा।**

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७२ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७३ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ७५,४२,२१,५०० (पचहत्तर करोड़, बयालीस लाख, इक्कीस हजार, पाँच सौ)।

(ख) नाम-संख्या १२,०६,७५,४४,००० (बारह अरब, छः करोड़, पचहत्तर लाख, चौवालीस हजार)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंकलेश्वर, अंगनापारा, अंधराठाढी, अंबरनाथ, अंबाजोगाई, अंबाला कैंट, अंबाला शहर, अकबरपुर, अकोड़ा, अकोला, अगराना, अचरोल, अचानामुरली, अजमेर, अटरिया, अठहठा, अडसीसर, अनगाँव, अमरा, अमरावती, अमलोह, अमृतपुर, अमृतसर, अम्बाह, अरड़का, अलकनन्दा, अलवर, अलीगढ़, अलीपुरकला, अल्मोड़ा, अवरीकला, असुरेश्वर, अहमदाबाद, आइसन, आई.टी. रोड, आऊवा, आगरा, आडंद, आनन्दनगर, आबूरोड, आमगाँवबड़ा, आमागढ़, आरंभा, आर्वी, आष्टा, आला (नेपाल), आलेफाटा, आलोट, आसंग, इंगतपुरी, इंदरवास, इंदौर, इचलकरंजी, इटावा, इटौन्हा, इसौली, इलाहाबाद, इरांग पार्ट I-II, इरेल भेली I-II, ईसरदा, उख्रुल, उज्जैन, उतासैली, उदखेड़, उदगीर, उदयपुर, उधमसिंहनगर, उन्नाव, उरतुम, उलहासनगर, उस्मानाबाद, ऊदपुर, ऊना, ऊमरी, ऊसरी, ऋषिकेश, एटा, ऐनखेड़ा, ओड़ारसकरी, ओबरा, औरंगाबाद, कंचनपुर, कघारा, कछुआ, कछुआरा, कटक, कटनी, कटरा, कटिहार, कड़ीला, कदन्ना, कनखल, कन्नौज, कपासन, कफलोड़ी, करनसर, करनाल, करबगाँव, करही (शुक्ल), करीमुद्दीनपुर, करौदी, कलकत्ता, कल्याणपुर, कवलपुरा मठिया, कसारीडीह, काँगड़ा, कांग्पोक्पी, कांग्लातोम्बी, काचीगुड़ा, कानड़ी, कानपुर, कानूनगोयान, कान्दीवली, कापरेन, कालका, कालपी, कालाडेरा, कालापहाड़, कालीकट, कालूखाँड़, कालूहेड़ा, काशीपुर, किरारी, किदवईनगर, किशनगंज, कीसयारपुर, कुँआरिया, कुंडा, कुकड़ेश्वर, कुक्कुटपल्ली, कुक्षी, कुचामन सिटी, कुरमापाली, कुरावली, कुरुक्षेत्र, कुशहर, कुसैला, कूड़ाघाट, कृष्णनगर, केकड़ी, केंकरा, केदारपुरा, केन्दुआ, केशरपुरा, केसिंगा, कैथल, कोंच, कोईरागै, कोईलारी, कोकलकचक, कोटई, कोटद्वार, कोटा, कोठार, कोठी, कोड़लहिया, कोथराखुर्द, कोब्रुलैखा, कोरबा, कोलकाता, कोलारस, कोलिया, कोसीकला, कोसीर, कोहका, कोहलमिश्र, कौडिया, कौहाकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, खंडवा, खंडेला, खगड़िया, खजुरीरुण्डा, खजुहा, खंजूरी, खडगवॉकला, खड़ीत, खरखो, खरगढ़, खरगापुर, खरगोन, खराड़ी, खरेडा, खवासा, खाकोली, खानकित्ता, खालवागाँव, खालिकगढ़, खिरकिया, खिरलिया, खुँटपला, खुरपावड़ा, खुरई, खेड़ा रसूलपुर, खेलदेश पाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, खैल, खोकराकला, गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गंगेव, गंगोह, गंज, गड़कोट, गढ़पुरा, गढ़बसई, गणेती, गनोड़ा, गम्हरिया, गया, गरियाखेड़ी, गहमर, गाँधीनगर, गागर, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ीपुरा, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुड़ाबीजा, गुरदासपुर, गुलबर्गा, गोंडा, गोकुलेश्वर, गोडडा, गोपिबुंग, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोरेगाँव,

गोहिदा, गौंछेड़ा, गौरिया वरारी, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घरसोंधी, घरैहली, घाटासेर, घिंचलाय, घुंसी, घुघुली, घुनमारा, चंडीगढ़, चंदपुर, चंदौली, चंदला, चंदौली, चंदौसी, चक्कीरामपुर, चपकीबघार, चम्पाघाट, चाँडेल, चाचौड़ा, चाणेयाँ, चार हजारे, चावलपानी, चिखलाकला, चिचोली, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिलौली, चिल्हाड, चीचली, चुड़ा चाँदपुर, चुरू, चेन्नई, चेबड़ी, चैतड़, चैसार, चोरबड़, चोपड़ा, चौखा, चौमहला, चौरास, चौरी, चौहटन, च्यौड़ी, छकना, छिरास, छैंकुरी, छोटालाम्बा, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जगाधरी, जबलपुर, जमशेदपुर, जमालुद्दीनपुर, जमुआव, जमुड़ी, जम्मू, जयपुर, जरयाई, जरूड़, जलंब, जलपाईगुड़ी, जलालगढ़, जलोदा खाटयान, जसो, जसवंतढ़, जसवंतपुरा, जसदेवपुर, जहाँगीराबाद, जाजगीर, जाजरदेव, जाजली, जानडोल, जामपाली, जालन्धर, जालौन, जिन्तूर, जींद, जुलगाँव (नेपाल), जैतगढ़, जैतो, जैपूर, जैसलसर, जोधपुर, जोरहाट, जोस्यूड़ा, जौनपुर, जौनायंचाकला, जौलजीवी, झहुराटभका, झाँसी, झापा, झुट्ठा, झुन्झुनू, झूँसी, झूलाघाट, टटेड़ा, टिकरीखिलड़ा, टिकैतगंज, टिक्करी, टीकमगढ़, टूंगरी, टूण्डरी टाउन, टेघरा, टाडाभीम, टोडाराय सिंह, टोरड़ा, टोंकखुर्द, ठकुरापार, ठकठौलिया, ठठारी, ठाँ, ठाणे, ठीकरिया, ठुटी, डंडापुरा, डकोर, डडवाड़ा, डड़िहथ, डडूका, डबरा, डबोक, डबारो, डिब्रूगढ़, डीग, डीडवाना, डुंमराव, डोंगरिया, डोमचाचा, ढकनालहिया, ढाँगू, ढाड़ीरावत, ढेकवारी, ढेगाडीह, तरकेडी, तरीचरकला, तर्भा, तामली, ताल, तालागाँव, तिनसीना, तिलाड़, तिसपरी, तीनफेड़िया, तुनी, तेलंगाना, तेल्हारा, तोक्या, तोला, तोरीबारी, त्रिवेन्दरम, थरभीतिया, थाणा, थाणे, थानेसर, थुलवासा, दत्यारसुनी, दतिया, दमनपुर, दनकौर, दलसिंहसराय, दरगहिया, दहमी, दहिवद, दांदेड़ा, दातारामगढ़, दामनजोड़ी, दामोदरपुर, दारानगरगंज, दिगौड़ा, दियरी, दिलौरी, दिल्ली, दुआरी, दुर्ग, देईखेड़ा, देचू, देवनगर, देरगाँव, देवगाँव, देवठी, देवरा, देवरिया, देवरीकला, देवास, देशनोक, देहरादून, दौलतपुर चौक, दौसा, द्वारका, धनपुरा, धनसार, धन्धौड़ा, धनौरामण्डी, धमधा, धमोतर, धरवार, धर्मपुरा, धानीखेड़ा, नंदपुर, नअगा, नन्दावता, नदौरा, नन्हावारा कला, नमककटरा, नबाबगंज, नयी दिल्ली, नरवाना, नरसिंहपुर, नरायनपुर, नरेलाशंकरी, नलवार, नवादा, नहरकाटा, नांगलोई, नांदन, नाकोट, नागपुर, नागोद, नागौर, नाचनी, नाढ़ी, नाथूखेड़ी, नानगाँव, नानामाण्डवा, नारायणगढ़, नारायणपुरा, नावांशहर, नासिक, निफाड़, निमाज, नीमच, नीमताल, नेवरा, नेवासा, नैनकरा, नैनवा, नैनीताल, नोएडा, नोनीहाट, नोनैती, नौगाँव, न्यूमाधोपुर, न्यूशिमला, पंडतेहड़, पंडेर, पकड़ी, पचपेड़ा, पचावली, पटना, पटना सिटी, पड़ग, पतालघुटकुरी, पतारी, पत्थरकोट (नेपाल), पत्योरा, पदमपुर, पथरगुआँ, पथरिया, पनवाड़ी, पद्मनाभनगर, परभड़ी, परलीबैजनाथ, परसापाली, पलेई, पलेरा, पवई, पंहगेर, पहरा, पहारपुर, पाटमऊ, पाटलीपुत्र, पडरिडांडा, पानीपत, पाली, पाली मारवाड़, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिथापुर, पिपरिया, पिपलगाँवबसंत, पिपरियागंगा, पिपरौआकला, पिरैना, पिलखुआ, पीठीपट्टी, पीपलरावा, पीलीभीत, पुखरऊ, पुणे, पुनासा, पुपरी, पुरसन्डा, पुरेना, पुर्निया, पूरेगंगाराम, पेटलावद, पोखरभिण्डा, पोटली, पौआखाली, पौना, प्रतापपुर तरहर, प्रीतमपुरी, फतेहगढ़, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फसिया, फागा, फागी, फिरोजपुर, फिल्लौर, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, बंगलौर, बंसीपुर, बन्तवालु, बक्खापुरवा, बगदड़िया, बघेरा, बछरावा, बजकोट, बटेसरा, बड़कागाँव, बड़खेरवा, बड़वानी, बड़ालू, बड़ोरावला, बड़ीमुरवानी, बड़ौदा, बढ़लठोर, बदडीहा, बदायूँ, बनवसा, बनवारीबसंत, बनेड़िया, बनोरा, बनैल, बन्नी, बभनान, बमोरा, बमनियाकला, बयडीहा, बयाना, बरखेडासोमा, बरवाडीह, बरगदही वसंतनाथ, बरडा, बरडेज, बरमकेला, बरेला, बरेली, बरूड़, बरेलीकलॉ, बरोरी, बरोहा, बर्डोद, बलवाड़ा, बलदेवा, बलिया, बलौदा, बसन्तपुरखुर्द, बसदेहड़ा, बस्ती, बहादुरपुर, बहेरी, बस्तर, बाँसवाडा, बाँसाकला, बागपत, बागबहरा, बाघमारा, बाछौर, बामौरीताल, बाडमेर, बाप, बाबई, बामनखेड़ा, बायतु, बार, बारा, बालासोर, बाराबंकी, बालूमाजरा, बावड़ियाकला, बास, बिटोरा, बिदरेली, बिरहाकन्हई, बिलरा, बिलवई, बीकानेर, बीड़का खेड़ा, बीनागंज, बीरमपुरा, बीसापुरकला,

बुड़तरा, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बेगूँ, बेनियाकाबास, बेरलीखुर्द, बेहड़ी, बेरहामपुर, बेरावल, बेरासो, बेरी, बेलड़ा, बेलसोन्डा, बेलोना, बैकुंठपुर, बैरसिया, बैला, बोकारो, बोधन, बोराड़ा, ब्रह्मावल्ली, भईन्दर, भटगाँव, भटवलिया, भटिण्डा, भदानीनगर, भदरु धनेटा, भन्सुली, भन्दर, भयन्दर, भरतपुर, भरथना, भरवाई, भरसी, भरूच, भलकी, भलदेन, भलस्वा ईसापुर, भवराणा, भाटनटोला, भाड़तू, भाणुजा, भादरा, भिण्ड, भिण्डुवा, भिनगा, भीकनगाँव, भिनाय, भिलाई, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीमदासपुर, भीनासर, भुज, भुसावर, भुसावल, भैसलाना, भैसछोड़, भैरमपुर, भोकरदन, भोगपुर, भोड़वालमाजरी, भोपाल, मंगराजपुर, मंडी, मंडीगोविन्दगढ़, मंत्रिपुखी, मक्यांग, मऊ, मकवा, मजिरकांडा (नेपाल), मझगुवाँखुर्द, मझरिया, मझलैटा, मडू, मथुरा, मदाना, मधुबनी, मनकापुर, मनोरी, मलँगवा (ने०), महराजगंज, महरौनी, महल, महाजनान, महादेवा, महासमुन्द, महिषी, महुआ, महुआशाला, महुडर, महेसानी (ने०), महेन्द्रू, महेशानी, मांडल, माचलपुर, माजिरकाडा, माडलगढ़, मानेडाड़ा, मारगोमुण्डा, मिर्जापुर, मिश्रपुर, मिश्राढ़ौर, मीलवां, मुँगेर, मुँगेली, मुखेड़, मुम्बई, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुठीपार, मुबारकपुर, मुरडाकिया, मुरमूनी, मुरादाबाद, मुर्रई, मुलड, मुलताई, मुल्लनपुर, मुलुण्ड, मुस्तफाबाद, मूडी, मेड़तारोड, मेड़तासिटी, मेरठ, मेवड़ा, मैगलगंज, मैहर, मोटबुंग, मोतियाडुमरिया, मोरपा, मोरकोन, मोलकोन, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, रंगिया, रगजा, रघुनाथपुर, रजीपुरा, रठेरा, रणग्राम, रतनपुर, रतनमहका, रतलाम, रतनागरपुर, रनचिराई, रनवारी, रन्नौद, रन्नी, रसूलपुर, रसूलिया, रहली, राँची, राजनगर, राजनाद गाँव, राजपुर, राजरूपपुर, राजाआहर, राजापारा, राजेपुर, रादौर, रानापुर, रानीकटरा, रामनगर, रामपुर, रामपुरनैकिन, रामपुरवा, रामेश्वर कम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुरशिवाला, रायबरेली, रायरंगपुर, रायला, रावतपुर, रावतभाटा, रावली, रावतसर, रींगस, रुड़की, रुदौली, रुस्तमनगर, रुहट्टा, रेवड़ापुर, रेहलू, रैहन, रोपर, रोपा, रोहतक, रोहनिया, लक्ष्मणगढ़, लखनऊ, लखनादौन, लक्खीबाग, लखना, लखनापुर, लखीमपुर खीरी, लमतड़ा, लरछुट, ललितपुर, लश्कर, लाखागुडा, लाडपुरा, लासूरसेहान, लाहरखेरा, लिखमीपुर, लिलवानी, लिलुआ, लुंगफौ, लुणसू, लुधियाना, लेडुआखाड़, लोहरदगा, लोहासिंहा, लोहारा, लैमाखोंग, वंडा, वक्खापुरवा, वटवारा, वदनरेंगगाई, वर्धमान, वर्धा, वल्लभनगर, वसई, वाड़ा, वाड़ी, वाड़ता, वापी, वाराणसी, वाहेगाँव दिमनी, विछलखा, विजावर, विदिशा, विराटनगर (ने०), विलसंडा, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, वैर, वैशाली नगर, वौना, व्यावर, शक्तिनगर, शमसाबाद, शान्तिपुर, शाजापुर, शाहकोट, शाहजहाँपुर, शाहतलाई, शाहपुर, शाहपुर (मगरौन), शाहपुरा, शाहपुरागोगावां, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिवाड़, शेखपुर, शेखावटी, शेरगढ़, शेरुडा, श्यामगढ़, श्योपुर, श्यामलाहिल्स, श्रीगंगानगर, संगढ़ेसिया, संदणा, संगनेश्वरनगर, संगावली, संघर, संबलपुर, सकरी, सतना, सन्तोलाबारी, सपिया, सफीपुर, सरथुआ, सलखुआ, सलेमपुर, सल्लिया, सरहुला, सरैधी, सरैया प्रवेशपुर, सल्लिया, ससना, सहारनपुर, सांगटी, साँगोद, सांगानेर, साढ़ूमल, सानड, सागर, सादाबाद, सानण पण्डितान, सामला, सारेयाद, सालोन बी, सावदा, साहू, साहूकारा, सिंगापुर, सिंगोली, सिंगहा यूसुफपुर, सिंघानी, सितारगंज, सिधौली, सिमलैगर बाजार, सिमरी, सिरपुर कागजनगर, सिरसा, सिरहौल, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिवनी, सीहोर, सीकर, सीतामढ़ी, सीथल, सीनखेड़ा, सीपरीबाजार, सीमातल्ला, सुखलिया, सुगवा, सुधारबाजार, सुरनगर, सुरही, सुल्तानपुर, सुहागपुर, सूरत, सेतीखोला, सेनापति, सेमराघुनवारा, सेमरामेडोल, सेमराहाट, सेमरीदेव, सेमारी, सेम्फेंजुंग, सेंठा, सेरा (ने०), सेरो, सेलु, सेहरी, सैमल चौड़, सोनपुरी, सोनभद्र, सोनरा, सोनवर्षाराज, सोनाहातु, सोनीपत, सोपेंजा नेपाली, सोरखी, सोरवना, सोलन, सोलापुर, हंसनगर, हटनी, हटवा, हटा, हतीसा, हथौड़ाखेड़ा, हमीरपुर, हरदा, हरदोई, हरसौली, हरिद्वार, हरिहरपुर, हल्दिया, हल्द्वानी, हल्दौर, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हसुआ, हाजीपुर, हातोतोता, हातोद, हाथरस, हाबड़ा, हारमा, हिंडौनसिटी, हिसार, हिगोलाकला, हिम्मतगंज, हुगली, हुबली, हुमायूँपुर, हैदरगढ़, हैदराबाद, होजाई, होशंगाबाद, होशियारपुर, हौआमौआड।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार पचहत्तर करोड़, बयालीस लाख, इक्कीस हजार, पाँच सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। **पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष श्रीभगवन्नाम जप एवं जापकोंकी संख्यामें काफी कमी हुई है, जो शोचनीय है।** भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७४)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके

साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक १४। ११। २०१६ ई०) सोमवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७४ दिन-मंगलवार (दिनांक ११। ४। २०१७)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे । घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे । ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे । राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे । धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे । तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥ [विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

कृपानुभूति

(१)

भोलेनाथकी कृपा

मेरे दामाद एक प्रतिष्ठित कम्पनीमें बड़े पदपर कार्यरत हैं। कार्यवश सालमें चार-पाँच महीने उन्हें विदेशमें रहना होता है। वे स्वभावसे बहुत ही उदार, मिलनसार और परोपकारी तो हैं ही साथ ही गणेशजीके परम भक्त भी हैं। जब वे जयपुरमें होते हैं तो हर बुधवारको जयपुरस्थित 'गढ़ गणेश' मन्दिरके दर्शन करने जरूर जाते हैं और लड्डूका प्रसाद चढ़ाते हैं। यह क्रम उनका १६-१७ सालसे चल रहा है।

अभी कुछ दिन पूर्वकी घटना है कि वे श्रीगणेशजीके दर्शनार्थ 'गढ़ गणेश' मन्दिरपर गये हुए थे। मन्दिरसे लौटते समय एक गेरुआ वस्त्रधारी, तेजस्वी आकृतिवाले महात्माने उनका रास्ता रोककर हँसते हुए कहा 'भई! पुत्रके दर्शन तो हमेशा करते हो, कभी पिताको भी स्मरण कर लिया करो'—यह कहकर उन्होंने एक डिब्बी उनके हाथमें रख दी और चले गये। उन्होंने लपककर उनके चरण-स्पर्श तो कर लिये, पर जबतक वे बातको समझते, वे जा चुके थे। आश्चर्य और कौतूहलके भावसे जब गाड़ीमें आकर उन्होंने डिब्बी खोली तो उसमें एक सुनहली चेन थी, जिसमें 'शिवजी' का पैन्डिल पड़ा हुआ था, (पैन्डिलमें शिवजी' का सुन्दर फोटो है) बादमें सर्राफको दिखलाया तो उसने बतलाया कि चेन २२ कैरिट सोनेकी है।

आजके जमानेमें कौन एक अपरिचितको यूँ सोनेकी चेन रास्ता चलते दे सकता है! ये तो प्रत्यक्ष 'शिवजी' ने उन्हें मार्गदर्शन दिया है; क्योंकि 'शिवभक्ति' के बिना तो सभी 'भक्तियाँ' अपूर्ण हैं। मेरे दामाद केवल गणेशजीको ही नमन कर रहे थे। बादमें उस जगह वे महात्माजी कभी नहीं दीखे। ये तो भोलेबाबाका बड़ा सुन्दर संकेत और भक्तके प्रति सुन्दर भाव था और भोलेनाथकी कृपा थी। अब वे गणेशजीके साथ-साथ 'भोलेनाथ' को भी स्मरण-नमन करने लगे हैं।—**करुणा मिश्रा**

(२)

भगवान्का अनुग्रह

लखनऊमें एक श्रीकृष्णभक्त थे श्रीसूरजप्रसादजी, जो भगवान्के अनन्य भक्त थे। वे भगवान्के भक्तों-सन्तोंकी सेवा सर्मपण भावसे प्रेमपूर्वक किया करते थे। अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक प्रभुकी कृपा उनपर बरसती थी। वैश्य जातिमें जन्म पाकर भी वे वणिक्-कर्मसे अधिक महत्त्व गौ, ब्राह्मण, गंगा, गीताकी सेवामें देते थे। श्रीगीता सत्संगमें उस समय बड़े त्यागी संत, महात्मा गीता-जयन्तीपर आया करते थे। परम पूज्य करपात्रीजी, स्वामी सच्चिदानन्दजी, स्वामी नारदानन्द, स्वामी श्रीरामदेवजी महाराज (जो भयंकर सर्दी दिसम्बर-जनवरीमें भी) कमरके ऊपर कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे, इन सबकी सेवामें ही वे भगवान्की सेवा समझते थे। उनके जीवनका सिद्धान्त था—

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥

(रा०च०मा० ३।३३)

जीविकोपार्जनके लिये उनकी गनेशगंजमें एक आटा-चक्की थी, पर स्वयं वे कभी नहीं बैठते थे, केवल जाकर निरीक्षण कर लिया करते थे। एक प्रसंग सन् १९४८ ई० के आसपासका है, जब श्रीसूरजप्रसादजी परम विरक्त हो गये थे, उनकी पत्नीका शरीर शान्त हो चुका था। चक्की बन्द होनेके कगारपर थी। बिजलीका बिल चुकानेके लिये उनको कठिनता हुई तो संचयपात्र (गुल्लक) जो उनकी बड़ी पुत्री रखती थी, उसको लेकर बिजलीका बिल चुकानेहेतु वे रेजकारी निकालकर बिजली कम्पनी पहुँचे। बिजलीका बिल और धनराशि दिया, परंतु यह क्या? काउण्टरपर कैशियरने बिलपर हस्ताक्षर कर दिया और कहा कि अभी-अभी आप धन देकर गये और कहा था, बिल लेकर आता हूँ। सूरजप्रसादजी स्तब्ध हो गये, बहुत कहा कि मैं तो अभी-अभी आया हूँ, पहले आया ही नहीं, परंतु ईमानदार कैशियरने उनसे धन नहीं लिया। थोड़ी देर विचारकर वहीं खड़े रहे, फिर आर्त स्वरमें बोले—'धन्य हो प्रभु! आपने मेरे लिये इतना कष्ट उठाया। मेरा रूप धरकर आपने अनुग्रह किया।' उनके अश्रुधारा निकल पड़ी। घरपर आकर लीलाधरकी लीलासे विह्वल होकर, सब कार्य छोड़ दिया। केवल प्रभुका स्मरण, ध्यान, भजन ही उनकी दिनचर्या हो गयी। **'अनुग्रहाय भूतानाम्'** स्वतः सिद्ध हो गया।—**उमाशंकर**

पढ़ो, समझो और करो

प्रेतात्माओंसे छुटकारा

इसे घटना या दुर्घटना जो भी कहें, यह मेरे साथ १९६५ ई० में घटित हुई थी। हुआ यूँ कि हठात् मेरे घरपर ईंट-पत्थरोंकी बरसात शुरू हो गयी। यह घटना रोज रात्रि ९ बजे होती थी। मैं विज्ञानका शिक्षक भूत-प्रेतके अस्तित्वपर यकीन नहीं करता था। अतः इसे शरारती तत्त्वोंका उपद्रव समझकर मैंने मकानके चारों तरफ चौकसी एवं प्रकाशकी व्यवस्था कर दी। पर कुछ लाभ नहीं हुआ और ईंट-पत्थरोंकी बरसात होती रही। हारकर पण्डितोंसे सलाह ली, उन्होंने महामृत्युंजय जपका सुझाव दिया, परंतु जब वे जप कर रहे थे, उनके आगे ही मानव-मल गिर गया और बाकी उपद्रव बदस्तूर जारी रहा। आश्चर्य यह कि यह नियत समयपर ही होता रहा। इसके बाद हताशासे ग्रसित होकर ओझा-गुणीका सहारा लिया, पर राहत नहीं मिली। बल्कि अब मेरी पत्नीको मानवाकार आकृति भी दिखने लगी, जिससे मेरी पत्नी भयभीत हो गयी। मैंने उन्हें ढाढस बँधाया और कहींसे सुनी हुई एक तरकीब अपनायी। लम्बी सूईमें धागा पिरोकर उन्हें इस हिदायतके साथ दिया कि जब वह आकृति दिखायी दे, इस सूईको उसके कपड़ेमें लगा दें। उन्होंने वैसा ही किया, मैं भी साथ ही था। धागेका पुलिन्दा घूमने लगा और वह आकृति भागने लगी। जब पुलिन्देका घूमना बन्द हुआ, हम धागेका अनुसरण करते आगे बढ़ने लगे। घरसे थोड़ी दूरपर सूई मिली, जो लम्बवत् खड़ी थी एवं उसकी नोकमें एक सीपका छोटा टुकड़ा फँसा था। मैंने उस सीपके टुकड़ेको निकालकर आगमें जला दिया। इसके बाद करीब १५ दिनोंतक कोई घटना नहीं घटी। मैंने चैनकी साँस ली, परंतु १५ दिनोंके बाद अब यह विपदा नये रूपमें प्रकट हुई। अब ईंट-पत्थरकी बरसात तो नहीं होती थी; बस, आकृतिके प्रकट होनेसे पूर्व करीब दस मिनटतक जले मांसकी दुर्गन्ध आती थी, फिर आकृति प्रकट हो जाती थी। चूँकि हमने उससे राहत पानेकी विधि ढूँढ़ ली थी अतः पुनः उसी सूईवाली विधिका प्रयोग शुरू कर दिया। अब उस सूईकी नोकपर प्राप्त सीपके टुकड़ेको नष्ट करनेके लिये अपनी प्रयोगशालासे अम्लराज बनाकर उसमें डाल देता था, जिससे वह सीप कुछ ही देरमें गैस बनकर विलुप्त हो जाती और मैं एक सप्ताहतक उस उपद्रवसे मुक्त हो जाता। इस तरह करीब ६ महीनेतक यह प्रक्रिया चलती रही।

इसके बाद एक दिन जब मेरी पत्नी मुझे नाश्तेके लिये दही-चूड़ा देकर उसपर चीनी डाल ही रही थी कि हठात् मेरे आगे दो दस-दसके नोट गिर पड़े। मैंने उन्हें उठाकर कल्याण पत्रिकाके पन्नोंके बीच रख दिया। कुछ समय बाद देखा तो नोट गायब थे। पुनः शामके चार बजे मेरे आगे दस-दसके पुराने नोट गिरे। उसे उठाकर उसी समय मजदूरी लेने आये मजदूरोंको दे दिया। इसी तरह असमंजस तथा ऊहापोहके बीच समय गुजरता रहा। हाँ, इसी बीच एक जारमें करीब ५ किलो चीनी भरी मिली तथा दूसरे दिन एक दूसरे जारमें बीड़ीके करीब ५०० टुकड़े भरे मिले। रातको सोते समय पत्नी दीवालकी तरफ और मैं बाहरकी तरफ सोता। चूँकि उस उपद्रवमें कुछ कमी आ गयी थी और लड़नेकी युक्ति भी मिल गयी थी। अतः कुछ निश्चिन्त-सा हो गया था, परंतु एक रात सुप्तावस्थामें ही उस दुष्ट छायाने मेरी पत्नीको उठाकर मेरे ऊपरसे होते हुए पलंगके नीचे जमीनपर फेंक दिया। मैं उठकर पत्नी जो बेहोश थी, उसे होशमें लानेकी चेष्टा करने लगा, परंतु उसे होश नहीं आया। तब मैंने रामायण-पाठ करना शुरू कर दिया। मूर्छित अवस्थामें ही पत्नीके मुँहसे निकला—'मैंने बहुत रामायण पढ़ी है।' फिर मैंने हनुमानचालीसाका पाठ करना शुरू किया। बेहोशीमें ही पत्नी बोली—'इसे पढ़ना बन्द करो, मुझे दुर्गन्ध लग रही है।' मैंने पाठ बन्द कर दिया। कुछ देर बाद पत्नी होशमें आ गयी। अब मुझे एक दूसरा हथियार भी मिल गया था, पर मैंने सोचा इस तरह कितने दिनोंतक मुकाबला करता रहूँगा। यही सोचकर एक पहुँचे हुए साधू मौनी बाबाके पास गया, जो जमीनके अन्दर एक खोह बनाकर रहते थे। मैंने खोहमें जाकर उन्हें अपनी विपदा सुनायी। उन्होंने कहा—'मुझे सांसारिक बातोंसे क्या लेना देना।' इसपर मेरा प्रतिप्रश्न था 'तो हम सांसारिक जीव कहाँ जायँ?'' 'इसपर उन्होंने कहा कि आपकी पत्नीको जिन्नने पकड़ लिया है। आप एक सूअर ले आइये और उसे घरमें बाँधकर रखिये। सूअरकी आवाजसे जिन्न भाग जायगा। मौनी बाबासे परामर्श लेकर मैं घर लौटा। जैसे ही

घरमें प्रवेश करने लगा चौखटके पास ही करीब एक सूप सूखा मानव-मल गिरा। सूअरके रखनेपर भी मेरी परेशानी खत्म नहीं हुई। मैंने सूअर एक डोमको दे दिया।

इसी तरह एक रात वह जिन्न मेरी पत्नीके पाँव पकड़कर खींचने लगा। मैंने पत्नीके दोनों हाथ पकड़ लिये। थोड़ी देरकी इस खींचातानके बाद मैं आँगनमें खाट बिछाकर सो गया, पत्नी भी साथ ही सोयी थी। हठात् उस जिन्नने खाट उलट दी। अब मैंने सोचा इससे मुक्तिके लिये कुछ और करना चाहिये। इसी उधेड़-बुनमें सुबहके ९ बज गये। इसी समय मेरी मुलाकात एक ग्रामीण बुजुर्गसे हुई। उन्होंने कहा अगर बाबाने चाहा होता तो मुक्ति मिल जाती, खैर अब आप तिमाई विषहर देवी मन्दिर, जो बछवाड़ा स्टेशनसे कुछ किलोमीटरकी दूरीपर अवस्थित है, जाइये। मैं दूसरे ही दिन समस्तीपुर जाकर सुबह गाड़ी पकड़कर बछवाड़ा गया। वहाँ उतरकर पत्नीके साथ पैदल ही रेल लाइनके किनारे-किनारे मन्दिर जानेके लिये निकल पड़ा। सहसा मैंने देखा रेललाइनके किनारे मेरे साथ-साथ एक पत्थरका टुकड़ा भी लुढ़कते हुए चल रहा है। जगह सुनसान थी अतः किसीके द्वारा पत्थर फेंकनेकी सम्भावना भी नहीं थी। लुढ़कता पत्थर जब रुकता, दूसरा पत्थर उसके साथ ही लुढ़कने लगता। मैंने जब पत्नीका ध्यान इस तरफ दिलाया तो वे बोलीं, वह जिन्न तो साथ-साथ चल रहा है। खैर, किसी तरह दोपहरको हम तिमाई विषहर देवी मन्दिर पहुँचे। वहाँ मेरी मुलाकात उजियारपुर गाँवके एक व्यक्तिसे हुई, वह भी मन्दिरमें अपनी फरियाद लेकर आया था। उसने बताया कि पुजारी बहुत सिद्ध पुरुष है और इससे पहले वह इनके पास आकर अपनी मुराद पा चुका है। एक मुकदमेके सिलसिलेमें उसने खर्चके साथ जीतकी भविष्यवाणी की थी, जो सत्य सिद्ध हुई। वह आपको आपकी मुसीबतसे छुटकारा अवश्य दिलायेगा। इसी बीच पुजारीसे भी भेंट हुई और उसने आश्वासन दिया कि मुक्ति मिल जायगी। वह व्यक्ति चला गया, परंतु मैं पुजारीके पास ही रुक गया। उस दिन मन्दिरमें टेक (मुसीबतजदा लोगोंकी मुक्तिके लिये होनेवाला धार्मिक अनुष्ठान) लगना था। जूनका महीना था, शामके पाँच बजते-बजते काफी बड़ी संख्यामें पीड़ित व्यक्ति मुक्तिके लिये आकुल हो इकट्ठा हो गये थे। पुजारी आराधना करने लगा। शाम साढ़े सात बजे वह मंचसे नीचे उतरा। एक व्यक्ति मृदंग बजाने लगा और वह पुजारी डालीमें चावल तथा एक बड़े ताँबेके बर्तनमें जल लेकर लोगोंका इलाज करने लगा। इसके बाद उसने मुझे बुलाया और मेरे द्वारा पहले ही कही बातोंको दुहराकर मुझे भी चावल-जल देकर मुक्तिका आश्वासन भी दिया, परंतु मुझे सन्तोष नहीं हुआ। इसपर मेरे द्वारा पूछनेपर उसने १५ दिनों बाद आनेको कहा और दूसरे लोगोंके इलाजमें व्यस्त हो गया। तरह-तरहके लोग और तरह-तरहकी समस्या। कोई बीमार था, किसीके घर चोरी हुई थी, किसीको नौकरी नहीं मिल रही थी, किसीका व्यापार मन्दा तो किसीका पत्नीसे विग्रह। पुजारी सभीको चावल और जल देता और सभीको कठिनाइयोंसे मुक्तिका आश्वासन भी। इतनेमें भोर हो गयी और साथ ही इस सिलसिलेकी समाप्ति भी। इसके बाद वहीं आये कुछ लोगोंके साथ मैं तेधड़ा स्टेशन आ गया, उनमेंसे कुछ गंगास्नान करने सिमरिया जा रहे थे। मैं भी गंगास्नानके उद्देश्यसे पत्नीके साथ ही सिमरिया गंगातटपर पहुँच गया। वहीं किसी अज्ञात प्रेरणावश हम दोनों पति-पत्नीने देवघर बाबाधाम जानेका निर्णय लिया और पैदल ही पुल पारकर गंगाजलके साथ हथिदह स्टेशन आया। वहीं चूड़ा-आम खाकर देवघरकी गाड़ी, जो शाम ६ बजे आनेवाली थी, की प्रतीक्षा करने लगा। ९ बजे रातमें गाड़ी आयी, बड़ी भीड़ थी। किसी तरह सामनेके डिब्बेमें घुसा, पर यह आरक्षित डिब्बा था। टी०टी० बिगड़ने लगा तो अगले स्टेशनपर उतर जानेकी बात कहकर उसे शान्त किया। इसी बीच किसीने गाड़ीकी जंजीर खींच दी और गाड़ी रुक गयी। टी०टी० पुनः डिब्बेसे उतरनेकी जिद करने लगा और मैं पत्नीके साथ ही उस सुनसान जगहमें उतर पड़ा। इसी अफरा-तफरीमें गंगाजल न जाने कहाँ छूट गया। बिना प्लेटफार्मके गाड़ीमें चढ़नेमें दिक्कत होने लगी, उसपर भारी भीड़। मैं एक डिब्बेसे दूसरे डिब्बेमें चढ़नेकी बेकार कोशिश करता रहा। इतनेमें एक डिब्बेके नजदीक जानेपर एक लड़कीने मेरी पत्नीको पुकारा और हाथ पकड़कर ऊपर खींच लिया। उसने भ्रमवश उसे अपनी परिचिता समझ लिया था, अस्तु हम किसी तरह गाड़ीमें पुनः चढ़ गये।

वैद्यनाथधाम पहुँचकर रात प्लेटफार्मपर ही बितायी। सुबह होनेपर अब कहाँ जाऊँ—यही सोच रहा था कि याद आया मेरे ही गाँवका रामचन्द्र चौधरी यहीं प्राइवेट बिजली मिस्त्रीका काम करता है। रिक्शाकर मैं चौधरीके

यहाँ पहुँचा। वहीं नित्यकर्मसे निवृत्त होकर स्नानादिके बाद मन्दिर-परिसर पहुँचा। गंगाजल तो रास्तेमें ही छूट गया था। अत: फूल खरीदा और मन्दिर-परिसरमें ही अवस्थित चन्द्रकूपसे जल लिया। तत्पश्चात् पत्नीसहित बाबा वैद्यनाथका जलाभिषेक किया। वापस चौधरीके यहाँ आकर भोजन हुआ और उसके बाद अपनी मुसीबतका हाल उनसे कहने लगा। उन्होंने एक तान्त्रिकका पता बताया जो ५०० रुपये लेकर इस मुसीबतसे छुटकारा दिला सकता था। उस समय मेरी तनख्वाह मात्र १२५ रुपये ही थी, अत: चार महीनेका वेतन मुझे अत्यधिक लगा। अत: उस विचारको छोड़ दिया। रामचन्द्र चौधरीके पास किरायेके मकानमें एक कोठरी और एक बरामदा था। वे सपत्नीक कोठरीमें रहते थे। अत: उन्होंने अपना बरामदा हमारे रहनेके लिये दे दिया। शामको फिर मन्दिर जाकर सन्ध्या-शृंगारका अवलोकन किया। वापस आकर खाना खाया और सो गया। सुबह पत्नीने रात देखे गये सपनेकी बात कही। सपनेमें एक गौरवर्ण सुन्दर साधुने दर्शन दिया और कहा कि 'तुम एक जंजालमें पड़ी हो, अगर शिवरात्रिके दिन बाबा वासुकीनाथको चढ़ाये गये मौरी (सिरके शृंगारकी टोपी)-का कोई भी हिस्सा यन्त्रमें मढ़वाकर पहन लो तो संकटसे छुटकारा मिल जायगा। यद्यपि उसका मिलना दुष्कर है, परंतु चेष्टा करनेसे प्राप्त हो जायगा।'

मैंने भी पत्नीको बताया कि आज मेरे मनमें भी वासुकीनाथ जानेका खयाल आ रहा था। चलो, वहीं चलें। इसी विचारसे हम शिवगंगा (देवघरका बृहत् तालाब) गये और वहींसे बस पकड़कर वासुकीनाथ पहुँचे। वहाँ स्नानकर कूपसे जल लेकर वासुकीनाथका जलाभिषेक किया। वहाँ दक्षिणाके लिये संग लगे पण्डेको चार आने दक्षिणा देकर वांछित मौरीका कोई भाग देनेका आग्रह किया। वह मन्दिर-परिसरमें चला गया, थोड़ी देर बाद लाल कपड़ेका एक टुकड़ा लेकर लौटा, जो शिव-पार्वतीके गठबन्धनमें प्रयुक्त कपड़ेका हिस्सा था। मैंने पुन: उसे शिवरात्रिके दिन चढ़ाये गये मौरीके अंशकी बात कही। उसने कहा वह तो नहीं मिला। मैंने पुन: उसे आठ आने पैसे देनेका प्रस्ताव दिया, जिसपर वह पुन: चेष्टा करने चला गया। कुछ समय बीतनेपर वह लौटा उसके हाथमें लाल रंगका अखबारका टुकड़ा था, जिसे उसने मौरीका हिस्सा बताकर हमें दे दिया। मैंने उसे पैसे दिये, एक शिव-चालीसा खरीदकर उसमें टुकड़ेको रखा और वैद्यनाथधामके लिये वापस हो लिया। लौटकर चौधरीजीको सारी बातें बतायीं और पुन: सन्ध्या-शृंगारका दर्शन किया। वापस आकर रात्रि भोजनके पश्चात् सो गया। सुबह निवृत्त होकर पलंगपर बैठा था। मेरी पत्नी चौधरीजीकी पत्नीके साथ बिजलीके चूल्हेपर भोजन बनानेके क्रममें पानी उबाल रही थीं। चौधरीजी चाय पीने बाहर किसी दुकानपर गये हुए थे। मैं पलंगपर लेटकर गौरैयोंका आना-जाना और कल्लोल देख रहा था। इसी क्रममें एक मिट्टीका टुकड़ा नीचे गिरा, इतनेमें ही एक ईंटका टुकड़ा चौधरीजीकी पत्नीके समीप गिरा। जिसे देखकर चौधरीजीकी पत्नी भयभीत तथा मेरी पत्नी मूर्छित हो गयीं। इतनेमें ही चौधरीजी भी वापस आ गये। सारी बातें सुनकर बोले, 'यह मकान तान्त्रिकद्वारा बाँधा हुआ है, यहाँ प्रेत उपद्रव नहीं हो सकता, मुहल्लेके किसी शरारती बच्चेने ही ऐसी हरकत की होगी।' इतनेमें ही दो और ईंटें उनके सामने ही गिरीं। वह भी विचलित हो गये और मुझसे पैसा लेकर जल्दी यन्त्र बनवानेहेतु चले गये। थोड़ी देर बाद ताँबेका यन्त्र लेकर लौटे और बोले—'इसकी कीमत दो आनेसे अधिक नहीं होनी चाहिये, परंतु दुकानदारने दस आने ले लिये।' मैंने कहा—'समयपर मिल गया, यही बहुत है।' उनसे यन्त्र लेकर उसे खोलकर वासुकीनाथसे लाये गये कागज एवं वैद्यनाथधामका शृंगार चन्दन डालकर यन्त्रको बन्द किया। पत्नी अबतक बेहोश ही पड़ी थी। चौधरीजीके कहनेपर एक धागेमें यन्त्रको पिरोकर पत्नीकी गर्दनमें पहना दिया। यन्त्र पहनते ही पत्नी होशमें आ गयी और बोली—'वही प्रेतछाया यहाँ खड़ी थी। यन्त्र पहनते ही भाग खड़ी हुई।' वह स्वस्थ हो चुकी थी। उन्होंने इसके लिये मौरीको श्रेय दिया जबकि चौधरीजीका कहना था कि यह धामचन्दनका प्रभाव है। जो भी हो, तीन-चार दिन वहीं रुका रहा और उसके बाद अपने गाँव वापस आ गया। उस प्रवासके अन्तिम दिन पत्नीको स्वप्नमें बाबाके दर्शन हुए और उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा—'अब तू जा, तुझे यन्त्रकी भी जरूरत नहीं पड़ेगी', और सचमुच उस दिनके बाद किसी तरहका उपद्रव नहीं हुआ और मैं भय-चिन्तासे मुक्त हो गया।

—कुलानन्द झा

मनन करने योग्य

सुख-दुःखका साथी

काशिराजके राज्यकी बात है, एक व्याधने जहरसे बुझाया हुआ बाण हरिनोंपर चलाया। निशाना चूककर बाण एक बड़े वृक्षमें धँस गया। जहर सारे वृक्षमें फैल गया। उसके फल एवं पत्ते झड़ गये और वृक्ष सूखने लगा। उस पेड़के खोखलेमें बहुत दिनोंसे एक तोता रहता था। उसका पेड़में बड़ा प्रेम। अतः पेड़ सूखनेपर भी वह उसे छोड़कर नहीं गया था। उस धर्मात्मा और कृतज्ञ तोतेने बाहर निकलना छोड़ दिया और चुगा-पानी न मिलनेसे वह भी सूखकर काँटा हो गया। वह धर्मात्मा तोता अपने साथी वृक्षके साथ ही अपने प्राण देनेको तैयार हो गया। उसकी इस उदारता, धीरज, सुख-दुःखमें समता और त्यागवृत्तिका वातावरणपर बड़ा असर हुआ। देवराज इन्द्रका उसके प्रति आकर्षण हुआ। इन्द्र आये। तोतेने इन्द्रको पहचान लिया। तब इन्द्रने कहा—

'प्यारे शुक! इस पेड़पर न पत्ते हैं, न कोई फल। अब कोई पक्षी भी इसपर नहीं रहता। इतना बड़ा जंगल पड़ा है, जिसमें हजारों सुन्दर फल-फूलोंसे लदे हरे-भरे वृक्ष हैं और उनमें पत्तोंसे ढके हुए रहनेके लायक बहुत खोखले भी हैं। यह वृक्ष तो अब मरनेवाला ही है। इसके बचनेकी कोई आशा नहीं है। यह अब फल-फूल नहीं सकता। इन बातोंपर विचार करके तुम इस ठूँठे पेड़को छोड़कर किसी हरे-भरे वृक्षपर क्यों नहीं चले जाते?'

धर्मात्मा तोतेने सहानुभूतिकी लम्बी साँस छोड़ते हुए दीन वचन कहे—'देवराज! मैं इसीपर जन्मा था, इसीपर पला और इसीपर अच्छे-अच्छे गुण भी सीखे। इसने सदा बच्चेके समान मेरी देख-रेख की, मुझे मीठे फल दिये और वैरियोंके आक्रमणसे बचाया। हे देवेन्द्र! इन्हीं सब कारणोंसे मेरी इस वृक्षके प्रति भक्ति है, इसीलिये मैं यहाँसे अन्यत्र जाना नहीं चाहता। ऐसी दशामें आप मेरी सद्भावनाको व्यर्थ बनानेकी चेष्टा क्यों करते हैं? आज इसकी बुरी अवस्थामें मैं इसे छोड़कर अपने सुखके लिये कहाँ चला जाऊँ? जिसके साथ सुख भोगे, उसीके साथ दुःख भी भोगूँगा। मुझे इसमें बड़ा आनन्द है। आप देवताओंके राजा होकर मुझे यह बुरी सलाह क्यों दे रहे हैं? श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये दूसरोंपर दया करना ही महान् धर्मका सूचक है। दयाभाव श्रेष्ठ पुरुषोंको सदा ही आनन्द प्रदान करता है।* जब इसमें शक्ति थी, यह सम्पन्न था, तब तो मैंने इसका आश्रय लेकर जीवन धारण किया; आज जब यह शक्तिहीन और दीन हो गया, तब मैं इसे छोड़कर चल दूँ? यह कैसे हो सकता है।'

तोतेकी मधुर मनोहर प्रेमभरी वाणी सुनकर इन्द्रको बड़ा सुख मिला। उन्हें दया आ गयी। वे बोले—'शुक! तुम मुझसे कोई वर माँगो।' तोतेने कहा—'आप वर देते हैं तो यह दीजिये कि यह मेरा प्यारा पेड़ पूर्ववत् हरा-भरा हो जाय।' इन्द्रने अमृत बरसाकर पेड़को सींच दिया। उसमें फिरसे नयी-नयी शाखाएँ निकल आयीं, पत्ते और फल लग गये। वह पूर्ववत् श्रीसम्पन्न हो गया और वह तोता भी अपने इस आदर्श व्यवहारके कारण आयु पूरी होनेपर देवलोकको प्राप्त हुआ। **[महाभारत]**

---

* अनुक्रोशो हि साधूनां महद्धर्मस्य लक्षणम्। अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति॥ (महा० अनु० ५। २४)

गोरक्षाका प्रश्न

स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद देशमें गोरक्षाकी चर्चा किसी न किसी रूपमें निरन्तर होती रही है। गोरक्षाके दो पहलू हैं—गोरक्षण और गोसंवर्द्धन। गोरक्षणका तात्पर्य है कि देशमें गोहत्या पूर्ण रूपसे बन्द होनी चाहिये तथा गोसंवर्द्धनका मतलब है कि भारतीय देशी गायोंकी नस्ल सुधारी जाय और उनकी सम्पूर्ण प्रजातियोंका संरक्षण हो। ये दोनों कार्य सरकारके सहयोगके बिना सम्पन्न नहीं हो सकते।

अंग्रेजोंके शासनकालमें स्वाभाविक रूपसे गोरक्षापर कोई ध्यान नहीं दिया गया, परंतु आजादी मिलनेके बाद भारतकी जनताको यह आशा थी कि देशमें पूर्ण रूपसे गोहत्या बन्द होगी तथा गोसंवर्द्धन भी हो सकेगा, परंतु ये सब हुआ नहीं। कांग्रेसके शासनकालमें गोरक्षाके लिये सत्याग्रह आन्दोलन और अनशन आदि भी हुए, जिसमें आंशिक सफलता तो मिली, उत्तर भारतके कुछ राज्योंमें गोहत्या बन्द हुई, परंतु देशके कई अन्य राज्योंमें आज भी गोहत्या हो रही है।

गोहत्या-विरोधी आन्दोलनोंमें भाजपाके कार्यकर्ताओंने पूरी तरहसे भाग लिया। पूर्व सरसंघचालक आदरणीय गुरुजी श्रीगोलवलकरजीने गोरक्षा सत्याग्रहमें पूर्ण सहयोग प्रदान किया। पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीअटलबिहारी वाजपेयीजीकी एक बार तेरह दिनोंकी सरकार बनी थी, जिसमें भाजपाकी नीतिके अनुसार संसद्‌में तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीशंकरदयालजी शर्माका भाषण हुआ था, जिसमें राष्ट्रपतिने भारतमें पूर्ण रूपसे गोरक्षा करनेकी भी चर्चा की थी। स्वयं अटलबिहारी वाजपेयीजीने समय-समयपर अपने भाषणोंमें गोरक्षापर विशेष रूपसे प्रकाश डाला। यद्यपि अटलबिहारीजीके नेतृत्वमें गठबन्धनकी सरकार होनेके कारण वे गोरक्षाका कार्य नहीं कर सके, परंतु वे चाहते थे कि भारतमें गोहत्याका काला कलंक समाप्त हो और गोसंवर्द्धन भी किया जाय।

वर्तमान समयमें भगवत्कृपासे भाजपाकी सरकार पूर्ण बहुमतसे बनी है। स्वाभाविक रूपमें भारतवासियोंकी यह अपेक्षा रही है कि भाजपाकी सरकार आनेपर गोहत्याका काला कलंक समाप्त हो जायगा। गोरक्षण और गोसंवर्द्धनका कार्य सरकारके सहयोगसे पूर्ण रूपसे सम्पन्न हो सकेगा।

पिछले दिनों गोरक्षाके नामपर एक-दो घटनाएँ इस प्रकारकी हुईं, जो वास्तवमें शर्मसार करती हैं। इन घटनाओंसे व्यथित होकर प्रधानमन्त्रीजीने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि ८० प्रतिशत लोग अपने कुकृत्योंपर पर्दा डालनेके लिये गोरक्षाकी बात करते हैं।

यद्यपि कभी-कभी अच्छे कार्योंमें भी कुछ थोड़ेसे असामाजिक तत्त्व आकर उसे बदनाम कर देते हैं। इन सबसे व्यथित होकर ही प्रधानमन्त्रीने इस प्रकारका वक्तव्य दिया होगा, परंतु यह कहना कि ८० प्रतिशत लोग ऐसा करते हैं, उचित नहीं है। समाजमें बहुत थोड़े लोग होंगे, जो गोरक्षाकी आड़में गलत कार्य करते हैं।

आज भी देशमें कई ऐसे स्थल हैं, जहाँ गोसेवा रचनात्मक रूपसे होती है। एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ लाखोंकी संख्यामें गोसेवा हो रही है। यह सब कार्य गोभक्तोंके सहयोगसे ही सम्भव है। प्रधानमन्त्रीजीके इस प्रकारके वक्तव्यसे गोसेवाके कार्यमें शिथिलता आनी स्वाभाविक है। अतः अपने प्रधान-मन्त्रीजीको इस सम्बन्धमें पुनर्विचारकर सावधानी बरतनी चाहिये, साथ ही विपक्षीदलोंसे भी यह अनुरोध है कि अपवाद-स्वरूप घटनेवाली इन घटनाओंको राजनीतिक रंग देनेका प्रयास न करें, कारण इससे गोरक्षामें बाधा उत्पन्न होती है।

गाय हमारी अस्मिता है। गायको हम माता कहते हैं। भारतीय संस्कृतिके गऊ, गंगा, गीता और गायत्री—ये चार स्तम्भ हैं। इन चारोंको अपने शास्त्रोंमें 'माँ' शब्दसे सम्बोधित किया गया है। माँ अपनी सर्वोपरि श्रद्धाकी अभिव्यक्ति है। गऊमातामें सभी देवी-देवताओंका निवास है। गायकी सेवा-पूजासे सभी देवोंकी पूजा-अर्चा सम्पन्न हो जाती है। हमारे कर्मानुष्ठान, यज्ञ-यागादि तथा कोई भी धार्मिक कृत्य गऊमाताके बिना सम्पन्न नहीं हो सकते। आर्थिक दृष्टिसे भी भारतमें गायका कम महत्त्व नहीं है। इन सभी बातोंको ध्यानमें रखकर सरकारको सावधान होना चाहिये और केन्द्रीय कानूनके द्वारा पूरे देशमें गोहत्या बन्द करनी चाहिये। साथ ही गोसंवर्द्धनकी दृष्टिसे गोरक्षाको प्रभावी बनानेके लिये केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें एक पृथक् मन्त्रालयका गठनकर योजनाबद्ध तरीकेसे गायके लिये चरागाह, चिकित्सालय आदिकी व्यवस्था करनी चाहिये तथा निजी क्षेत्रमें इन कार्योंको करनेवाले लोगोंको प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिये। गोरक्षाका यह महान् कार्य सरकार और जनता दोनोंके सहयोगसे ही सम्पन्न होना सम्भव है।

—राधेश्याम खेमका

कल्याणके पाठकोंसे नम्र निवेदन

आगामी वर्षका कल्याण विशेषांक **'श्रीशिवमहापुराणाङ्क'** [हिन्दीभाषानुवाद—प्रथम भाग, श्लोकाङ्कसहित] समयानुसार प्रेषित करनेकी चेष्टा है। वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹२२० है। आप अपना सदस्यताशुल्क—

१-गीताप्रेसकी निम्नलिखित पुस्तक दूकानोंपर रसीद लेकर जमा कर सकते हैं।

२-ऑन लाईन—gitapress.org पर Online Magazine Subscription को click करके शुल्क जमा किया जा सकता है।

३-आप मनीआर्डर/चेक/ड्राफ्ट, कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर भेज सकते हैं।

४-मनीआर्डरसे शुल्क भेजनेपर अलगसे भी अपना पूरा पता (पिनकोडके साथ), ग्राहक-संख्या, मोबाईल नम्बर आदि भेजना आवश्यक है।

५-यदि आपके द्वारा भेजा गया सदस्यता शुल्क १५ दिसम्बरतक हमें प्राप्त नहीं होता है तो पूर्वकी भाँति VPP से अंक आपको प्रेषित कर दिया जायेगा।

विशेष—पंचवर्षीय ग्राहक बनें।—सदस्यता शुल्क ₹११०० मात्र।

कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तक अब उपलब्ध

भजन-सुधा, सजिल्द (कोड 1783)—प्रस्तुत पुस्तकमें ४१९ भजनोंका अनुपम संग्रह है। इसमें गणेश, शिव, भगवान् विष्णु, भगवान् राम, श्रीकृष्ण, देवीके विभिन्न भजन तथा श्रीहनुमान्जीके भजन दिये गये हैं। प्रत्येक देवताके भजनके प्रारम्भमें संस्कृतमें उनके स्तोत्र भी संग्रहीत हैं। विभिन्न रागोंमें निबद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों तथा मारवाड़ी भाषाके विभिन्न भजनोंका यह संग्रह सबके लिये उपयोगी है। मूल्य ₹६०

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें

इन्दौर-452001 जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश-249304 गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक-753009 भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर-208001 24/55, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर-641018 गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स
कोलकाता-700007 गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर-273005 गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
चेन्नई-600010 इलेक्ट्रो हाउस, रामनाथन स्ट्रीट किलपौक
जलगाँव-425001 7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली-110006 2609, नयी सड़क
नागपुर-440002 श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड
पटना-800004 अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलुरु-560027 7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड
भीलवाड़ा-311001 जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर
मुम्बई-400002 282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)
राँची-834001 कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर-492009 मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)
वाराणसी-221001 59/9, नीचीबाग
सूरत-395001 2016 वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड
हरिद्वार-249401 सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद-500095 41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार
काठमाडौं (नेपाल) पसल नं० 6,7,8, माधवराज सुमार्गी स्मृति भवन, वनकाली, पशुपति क्षेत्र।

इन स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सकते हैं

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० 5-6); **नयी दिल्ली** (नं० 14-15); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० 4-5); **कोटा** [राजस्थान] (नं० 1); **बीकानेर** (नं० 1); **गोरखपुर** (नं० 1); **गोण्डा** (नं० 1); **कानपुर** (नं० 1); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० 4-5); **मुगलसराय** (नं० 3-4); **हरिद्वार** (नं० 1); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० 1); **धनबाद** (नं० 2-3); **मुजफ्फरपुर** (नं० 1); **समस्तीपुर** (नं० 2); **छपरा** (नं० 1); **सीवान** (नं० 1); **हावड़ा** (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० 1); **सियालदा मेन** (नं० 8); **आसनसोल** (नं० 5); **कटक** (नं० 1); **भुवनेश्वर** (नं० 1); **अहमदाबाद** (नं० 2-3); **राजकोट** (नं० 1); **जामनगर** (नं० 1); **भरुच** (नं० 4-5); **वडोदरा** (नं० 4-5); **इन्दौर** (नं० 5); **जबलपुर** (नं० 6); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **गोंदिया** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० 1); **विजयवाड़ा** (नं० 6); **गुवाहाटी** (नं० 1); **खड़गपुर** (नं० 1-2); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० 1); **बेंगलुरु** (नं० 1); **यशवन्तपुर** (नं० 6); **हुबली** (नं० 1-2); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— **चूरू**-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती; **बेरहामपुर**-म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, **नडियाद** (गुजरात) संतराम मन्दिर, **चेन्नई**-12, अभिरामी माल, पुरासावलकम, निकट किलपौक/वेपेरी।

प्र० ति० २०-९-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
41	शक्ति-अङ्क	१५०	789	सं० शिवपुराण	२००	584	संक्षिप्त भविष्यपुराण	१५०
616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२००	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	586	शिवोपासनाङ्क	१३०
604	साधनाङ्क	२५०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२००	653	गोसेवा-अङ्क	१३०
1773	गो-अङ्क	१७०	517	गर्ग-संहिता	१५०	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	१२०	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	९०	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००	1947	भक्तमाल-अङ्क	१३०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१२५	1189	संक्षिप्त गरुडपुराण	१६०
43	नारी-अङ्क	२४०	1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	२००	1985	लिङ्गमहापुराण-सानुवाद	२००
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२७०	1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजि०	६५
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण	३२५	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०	1592	आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण)	२००
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०	1610	देवीपुराण महाभागवत	१२०
1183	संक्षिप्त नारदपुराण	२००	1044	वेद-कथाङ्क (")	१७५	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
667	संतवाणी-अङ्क	१५०	1361	संक्षिप्त श्रीवाराहपुराण	१००	1842	" (उत्तरार्ध)	१००
587	सत्कथा-अङ्क	२००	791	सूर्याङ्क	१३०	1875	सेवा-अङ्क	१३०
636	तीर्थाङ्क	२००				2035	गङ्गा-अङ्क	२२०
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१६०						
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२४०						

अब सम्पूर्ण (छः) खण्डोंमें उपलब्ध—महाभारत (सटीक) **(कोड 728)** मूल्य ₹१९५० अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध। प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹३२५

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१७) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५५

पॉकेट साइज— **सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)**— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३०

अक्टूबर मासमें उपलब्धि सम्भावित—बँगला **(कोड 1489)**, ओड़िआ **(कोड 1644)**, तेलुगु **(कोड 1714)** पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण, प्रत्येकका मूल्य ₹ ७०